इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC-131
हिंदी साहित्य का इतिहास

खंड
2
भक्ति काव्यधारा

इकाई 4

संत काव्यधारा 5

इकाई 5

सूफी काव्यधारा 22

इकाई 6

कृष्णभक्ति काव्यधारा 36

इकाई 7

रामभक्ति काव्यधारा 53

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पांडेय
बीडी / 8ए, डी.डी.ए. फ्लैट
मुनिरका, नई दिल्ली–110067

प्रो. निर्मला जैन
ए–20 / 17, डी.एल.एफ. सिटी
फेज–1, गुड़गाँव–122002, हरियाणा

प्रो. विश्वनाथ त्रिपाठी
बी–5, एफ.2, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–110095

प्रो. हरिमोहन शर्मा
184, कादंबरी अपार्टमेंट, सेक्टर–9, रोहिणी, दिल्ली–110085

प्रो. गोबिंद प्रसाद
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

संकाय सदस्य
प्रो. सत्यकाम, निदेशक
मानविकी विद्यापीठ

प्रो. शत्रुघ्न कुमार

प्रो. स्मिता चतुर्वेदी

प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

इकाई लेखक

प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल	इकाई 4
डॉ. हरदयाल	इकाई 5
प्रो. जय सिंह	इकाई 6
प्रो. रीतारानी पालीवाल	इकाई 7

संशोधन
प्रो. सत्यकाम, डॉ. राजीव कुमार
(इकाई 4, 6 और 7)

पाठ्यक्रम संयोजन और संपादन
प्रो. सत्यकाम
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

संपादन सहयोग
डॉ. राजीव कुमार
परामर्शदाता, हिंदी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सचिवालयी सहयोग

श्री शशि रंजन आलोक
सहायक कार्यपालक (डाटा प्रासेसिंग)
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

आवरण

सुश्री अरविन्दर चावला
ए.डी.ए. ग्राफिक्स
नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री के. एन. मोहनन
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन), सामग्री निर्माण
एवं वितरण प्रभाग, इग्नू, नई दिल्ली-110068

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन), सामग्री निर्माण
एवं वितरण प्रभाग, इग्नू, नई दिल्ली-110068

सितंबर, 2019
© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2019*
ISBN : 978-93-89200-19-5
सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्र मुद्रण) द्वारा अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली–110068 से अथवा इग्नू की आधिकारिक वेबसाइट www.ignou.ac.in से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से **कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग** द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

कंपोज़िंग एवं लेज़र टाइपसैट– ग्राफिक प्रिंटर्स, 204, पंकज टॉवर, मयूर विहार फेस 1, दिल्ली – 110091

मुद्रक : एस जी प्रिण्ट पैक्स प्रा० लि०, एफ-478, सेक्टर-63, नोएडा-201301, उ०प्र०

खंड परिचय : (खंड 2 – भक्ति काव्यधारा)

आपके समक्ष अनिवार्य पाठ्यक्रम – **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** का द्वितीय खंड – **'भक्ति काव्यधारा'** प्रस्तुत है। इस खंड में कुल चार इकाइयाँ इस प्रकार से हैं :

इकाई–4 : संत काव्यधारा

इकाई–5 : सूफी काव्यधारा

इकाई–6 : कृष्णभक्ति काव्यधारा

इकाई–7 : रामभक्ति काव्यधारा

हिंदी साहित्य की भक्ति काव्यधारा विविधताओं से भरी हुई है। ईश्वर के स्वरूप के संबंध में इनके दृष्टिकोण तथा साधना पद्धति में अंतर के आधार पर मुख्य रूप से भक्तिकाव्य को चार धाराओं में बाँटा गया है। इस खंड में आपको इन चारों धाराओं के बारे में जानकारी दी जाएगी।

इस खंड की पहली इकाई **(इकाई–4 : संत काव्यधारा)** कबीर आदि संत कवियों के काव्य पर केंद्रित है। इन कवियों को निर्गुण ज्ञानमार्गी कवि भी कहा जाता है। इन्होंने परमात्मा को निर्गुण माना तथा योग और ज्ञान का मार्ग अपनाया। इनकी साधना पद्धति अथवा दर्शन पर अराधना की विभिन्न परंपराओं का प्रभाव है। इस इकाई में आप संतकाव्य के इन सभी पहलुओं की जानकारी पाएँगे। खंड की दूसरी इकाई **(इकाई–5 : सूफी काव्यधारा)** सूफी काव्यधारा पर केंद्रित है। सूफी कवि भी ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप में विश्वास रखते हैं। इन्होंने ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रेम का मार्ग अपनाया तथा इस प्रेम को अपने काव्य में भारतीय समाज में प्रचलित लोक कथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया। सूफियों की साधनात्मक प्रेमाभिव्यक्ति की कई निजी विशिष्टताएँ हैं। इस इकाई में इन सबके बारे में आप अध्ययन करेंगे।

खंड की तीसरी तथा चौथी इकाई सगुण भक्तिकाव्य की क्रमशः **कृष्णभक्ति काव्यधारा** तथा **रामभक्ति काव्यधारा** से संबंधित है। कृष्णभक्ति काव्य में दो तरह के कवि हुए, एक, वह जो वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र विट्ठलनाथ के शिष्यों से मिलकर बने कवियों का समूह था। इन्हें 'अष्टछाप' कवि भी कहा गया। मीरांबाई, रसखान वगैरह अष्टछाप से बाहर के कवि हैं। इस इकाई में इन सभी कवियों के योगदान के बारे में आप जान पाएँगे। साथ ही कृष्णभक्ति काव्य की वस्तुगत तथा शिल्पगत विशिष्टताओं की भी जानकारी यहाँ दी गई है। खंड की अंतिम इकाई रामभक्ति काव्यधारा पर केंद्रित है। इसमें भारतीय काव्य परंपरा में राम के व्यक्तित्व को आधार बनाकर की गई काव्य-रचनाएँ, हिंदी में रामभक्ति काव्य का विकास तथा इस काव्यधारा की अन्य विशिष्टताओं की जानकारी दी गई है।

आप इन इकाइयों का अध्ययन कीजिए तथा हर इकाई में दिए गए बोधप्रश्नों का उत्तर तैयार कीजिए। आपकी सुविधा के लिए बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा उन्हें हल करने के निर्देश इकाई के अंत में दिए गए हैं।

OU
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 संत काव्यधारा

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 निर्गुण भक्तिधारा और संतकाव्य

- 4.2.1 अवधारणा और अर्थ विकास
- 4.2.2 निर्गुणधारा में 'ज्ञानमार्गी' का अर्थ और दृष्टिकोण
- 4.2.3 निर्गुण संत परंपरा

4.3 प्रमुख निर्गुण संत कवि

4.4 निर्गुण संत कवियों का समाज-सुधारक रूप

- 4.4.1 पददलित जातियों में आत्मसम्मान का उदय
- 4.4.2 निर्गुण संतकाव्य की सामाजिक-सांस्कृतिक भावभूमि का वैशिष्ट्य

4.5 निर्गुण संतकाव्य का भाव पक्ष

- 4.5.1 संतकाव्य में 'राम'
- 4.5.2 संतों के दार्शनिक सिद्धांत
- 4.5.3 निर्गुण संतकाव्य में रहस्यवाद

4.6 निर्गुण संतकाव्य पर अन्य दर्शनों का प्रभाव

- 4.6.1 सूफियों के प्रेमदर्शन का प्रभाव
- 4.6.2 नाथों-सिद्धों का प्रभाव
- 4.6.3 वैष्णव चिंतन परंपरा का प्रभाव

4.7 निर्गुण संतकाव्य का अभिव्यंजना पक्ष

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 उपयोगी पुस्तकें

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आप भक्ति आंदोलन की परिस्थितियों तथा उसकी सामान्य विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में भक्ति आंदोलन की निर्गुण संत काव्यधारा की जानकारी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़कर आप :

- भक्तिकाव्य में 'निर्गुण' की अवधारणा के बारे में बता सकेंगे;
- संतकाव्य की अवधारणा और उसके अर्थ विकास की जानकारी दे सकेंगे;
- निर्गुण संत कवियों की परंपरा के विषय में बता पाएँगे और
- निर्गुण संतकाव्य के भाव पक्ष तथा अभिव्यंजना पक्ष के बारे में जानकारी दे सकेंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

4.1 प्रस्तावना

भक्ति आंदोलन सवा तीन सौ साल (आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 1318 ई. से 1643 ई.) में फैला एक व्यापक सामाजिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन था। भक्ति आंदोलन में कई धाराएँ सक्रिय थीं। पूरे भक्ति आंदोलन की कुछ सामान्य विशेषताएँ रहीं, जिसके बारे में आप इकाई-3 में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इन सामान्य विशेषताओं के इतर भक्ति-आंदोलन के अंदर मौजूद विभिन्न धाराओं की अपनी-अपनी निजी विशेषताएँ थीं। सर्वप्रथम ईश्वर के स्वरूप को लेकर इन विभिन्न धाराओं की अपनी-अपनी मान्यताएँ थीं। कबीर, जायसी आदि भक्त कवि ईश्वर (ब्रह्म) को निर्गुण-निराकार मानते थे, इस कारण इन भक्त कवियों को निर्गुण भक्त कवि कहा जाता है। सूरदास, तुलसीदास आदि भक्त कवि का मानना था कि ईश्वर अपने भक्तों पर कृपा करने के लिए अवतार लेते हैं। ईश्वर के अवतार में विश्वास रखने वाले इन कवियों को सगुण भक्त कवि कहा जाता है।

निर्गुण भक्तिकाव्य धारा भी उपासना पद्धति के आधार पर दो शाखाओं में विभाजित है। ये शाखाएँ हैं– (i) ज्ञानमार्गी कवियों की संत काव्यधारा तथा (ii) प्रेममार्गी कवियों की सूफी काव्यधारा। कबीर, रैदास, दादू आदि ज्ञानमार्गी संत कवियों ने ईश्वर की प्राप्ति के लिए ज्ञान को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया। 'ज्ञान', ईश्वर और मनुष्य के बीच जो 'माया' का भ्रम है, उसे हटाकर ईश्वर का साक्षात्कार कराता है। इस पाठ में आपको निर्गुण संतकाव्य के बारे में जानकारी दी जा रही है।

4.2 निर्गुण भक्तिधारा और संतकाव्य

4.2.1 अवधारणा और अर्थ विकास

निर्गुण भक्तिधारा में ईश्वर को निर्गुण-निराकार माना गया। इसकी भी दो उपशाखाएँ थीं : ज्ञानमार्गी (संतकाव्य) काव्यधारा और प्रेममार्गी काव्यधारा (सूफी काव्य)। ज्ञानमार्गी काव्यधारा को संतकाव्य भी कहा गया। संत काव्य का अर्थ है – संतों द्वारा रचा गया काव्य। सामान्यतः 'संत' शब्द का अर्थ होता है कोई भी सदाचारी पवित्रात्मा व्यक्ति। इसीलिए संत, साधु, महात्मा आदि शब्दों को पर्यायवाची मान लिया जाता है, लेकिन उनके अर्थ में अंतर है। विशिष्ट अर्थ में संत उस व्यक्ति को कहते हैं जिसने सत्यरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया हो और जो पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए निःस्वार्थ भाव से लोक कल्याण में रत रहता हो। संत का यह पारिभाषिक अर्थ कुछ व्यापक है। यह शब्द विकसित होते हुए एक और अर्थ में रूढ़ हो गया है। यह शब्द ज्ञानेश्वर इत्यादि उन निर्गुण भक्तों के लिए रूढ़ हो गया, जिन्होंने दक्षिण में विट्ठल अथवा वारकरी संप्रदाय का प्रचार किया। इनके साथ अनेक बातों में समानता होने के कारण कबीर आदि भक्त कवियों के लिए भी यह शब्द चल पड़ा। इसलिए हिंदी में जब 'संतकाव्य' कहा जाता है तो उसका अर्थ होता है– कबीर आदि निर्गुणोपासक ज्ञानमार्गी कवियों के द्वारा रचित काव्य। यद्यपि सगुणोपासक कवि भी संत ही थे लेकिन 'संत काव्य' विशेष रूप से निर्गुण काव्य धारा के अर्थ का द्योतक है।

4.2.2 निर्गुणधारा में 'ज्ञानमार्गी' का अर्थ और दृष्टिकोण

ब्रह्म के निर्गुण अर्थात सत्वादि गुणों से रहित अथवा उनसे परे रहने वाले रूप को लेकर चलने वाले भक्त कवियों को निर्गुण धारा का कवि कहा गया। जिन भक्त कवियों ने इस निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए ज्ञान को साधन बनाया, उन्हें 'ज्ञानमार्गी' कहा गया। कबीर आदि ज्ञानमार्गी निर्गुणधारा के कवि थे जिन्होंने निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए

मुख्यतः ज्ञान को साधन बनाया, वे ज्ञानमार्गी निर्गुण धारा के कवि कहलाए। जायसी और अन्य सूफ़ी कवि प्रेममार्गी निर्गुणधारा के कवि थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि ज्ञानमार्गियों के यहाँ प्रेम का सर्वथा अभाव था अथवा प्रेममार्गियों के यहाँ ज्ञान का सर्वथा अभाव था। यह विभाजन ज्ञान अथवा प्रेम की प्रधानता के आधार पर है।

ज्ञानमार्गी शाखा में 'ज्ञान' का अर्थ न तो साधारण इंद्रियजन्य ज्ञान है और न ही बौद्धिक तर्क-वितर्क से प्राप्त दार्शनिक ज्ञान है। इस शाखा में ज्ञान से तात्पर्य स्वतः उत्पन्न होने वाली प्रतिभा अथवा अतींद्रिय बोध से है। यह वस्तुतः अंतर्ज्ञान है जो सहज ही बिना किसी प्रत्यक्ष साधन के उत्पन्न होता है। इसीलिए इसे 'सहजज्ञान' भी कहा गया है। कबीर ने इसे 'ब्रह्मगियान' कहा है। इस ज्ञान के प्राप्त हो जाने से 'सहज समाधि' लग जाती है। कबीर के अनुसार यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाने पर सहज समाधि में करोड़ों कल्पों तक विश्राम किया जा सकता है। उनके शब्द हैं :

अब मैं पाइबो रे पाइबो ब्रह्म गियान।
सहज समाधैं सुख में रहिबो, कोटि कलप विश्राम।

4.2.3 निर्गुण संत परंपरा

निर्गुण संत कवियों की परंपरा का आरंभ ईसा की बारहवीं शताब्दी में जयदेव से होता है। इनके कुछ पद 'आदिग्रंथ' से संगृहीत हैं। ये पद निर्गुण भाव के हैं। साधारणतः माना जाता है कि 'गीतगोविंद' के रचयिता जयदेव और यह एक ही हैं, किंतु दोनों के काव्य की वस्तु और शैली में इतना अंतर है कि दोनों को एक मानना असंभव प्रतीत होता है। इस परंपरा में तेरहवीं शताब्दी में मराठी और हिंदी दोनों में भजन लिखने वाले नामदेव हुए। 'गुरुग्रंथसाहब' में इनके साठ से भी अधिक पद संगृहीत हैं। नामदेव उच्च कोटि के संत और कवि थे। कबीर के गुरू रामानंद इस परंपरा की तीसरी कड़ी हैं, किंतु हिंदी में संतकाव्य की दृढ़ नींव रखने वाले, उसे सम्मान्य बनाने वाले और सबसे अधिक प्रतिभाशाली कवि कबीरदास हुए हैं। कबीर जिन रामानंद के शिष्य थे, उनके अनेक शिष्य निर्गुण संत परंपरा के महत्वपूर्ण संत कवि सिद्ध हुए। इनमें से पीपा, सेना, धना, रैदास, सुरसरी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कबीर आदि इन संतों के शिष्यों-प्रशिष्यों की लंबी परंपरा हिंदी में चली है और आज भी चल रही है। इन्होंने अनेक पंथों और गद्दियों की स्थापना की। ऊपर उल्लिखित संतों के अतिरिक्त इस परंपरा से सधना, बाबरी साहिबा, कमाल, दादूदयाल, सुंदरदास, गरीबदास, जगजीवन साहब, जंभदास, सिंगाजी, हरिदास निरंजनी, धर्मदास, मलूकदास, अक्षर अनन्य, गुरु नानक, चरणदास, गुलाब साहब आदि सैकड़ों संत हुए हैं। इन सबने काव्य-रचना की है।

4.3 प्रमुख निर्गुण संत कवि

भक्ति-आंदोलन में निर्गुण संत कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसे ठीक-ठीक समझने के लिए प्रमुख संत कवियों का किंचित विस्तृत परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा :

नामदेव– संत साहित्य की नींव डालने वालों में महाराष्ट्र के नामदेव (जन्म 1271 ई.) का नाम बहुत महत्वपूर्ण है। मराठी में लिखे अभंगों के अतिरिक्त हिंदी में लिखी इनकी बहुत-सी रचनाएँ मिलती हैं। 'गुरुग्रंथसाहब' में ही इनके साठ से अधिक भजन संगृहीत हैं। प्रारंभ में यह सगुण भाव से भक्ति करते थे, किंतु अपने को गोरखनाथ की शिष्य-परंपरा में बताने वाले प्रसिद्ध ज्ञानयोगी ज्ञानदेव की प्रेरणा से यह नाथपंथ के प्रभाव में आकर निर्गुणोपासक संत बने। इनकी सधुक्कड़ी भाषा में लिखी रचनाओं से स्पष्ट है कि इन्होंने निर्गुणपंथ की नींव

डाली। इन्होंने निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप-निरूपण, कर्मकांड के खंडन आदि के साथ-साथ हिंदू-मुसलमान दोनों की आलोचना की और ज्ञानी संतों की श्रेष्ठता सिद्ध की :

हिंदू अंधा तुरका काना, दुवौ ते ज्ञानी सयाना।
हिंदू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद।
नामा सोई सेविया जहँ देहरा न मसीद।।

अर्थात हिंदुओं को दिखाई नहीं देता, तुर्कों यानी मुसलमानों को सुनाई नहीं देता। ज्ञानमार्गी भक्त इन दोनों से बड़े तत्वदर्शी होते हैं। हिंदू देवालय (मंदिर) जाते हैं, मुसलमान मस्जिद जाते हैं, लेकिन परमात्मा को वही जान पाता है जो इन दोनों से परे निरंतर नाम जपने में लगा रहता है।

कबीर (1398–1518 ई.) – कबीरदास का जन्म काशी में हुआ था। वे जाति के जुलाहा थे। जुलाहा वह जाति थी जिसने कुछ समय पहले ही मुसलमान धर्म स्वीकार किया था। इसलिए इस जाति के हिंदू संस्कार बने हुए थे। कबीर पर सिद्धों और नाथों का भी प्रभाव था। कबीर की प्रतिभा बड़ी प्रखर थी। उन्होंने विभिन्न प्रभावों का अतिक्रमण करने वाला अक्खड़ता और फक्कड़ता से युक्त ऐसा प्रखर व्यक्तित्व पाया था जो सबको अभिभूत कर लेता है। उनके काव्य में उनके इस व्यक्तित्व की ऐसी शक्तिशाली अभिव्यक्ति हुई है कि उसकी ताज़गी आज भी कम नहीं हुई है।

कबीर की मुख्य रचना 'बीजक' है जिसके तीन खंड हैं– साखी, सबद और रमैनी। साखियाँ दोहा छंद में लिखी गई हैं। 'गुरुग्रंथसाहब' में इन्हें 'स्लोक' (श्लोक) कहा गया है। 'सबद' (शब्द) पदों के रूप में लिखे गए हैं। 'रमैनी' जायसी के 'पद्मावत' या तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के समान कुछ चौपाइयों के बाद एक दोहा देने की शैली में लिखी गई है। कबीरदास ने अपनी रचनाओं में एक ओर जाति-पाँति, छुआछूत, पूजा-नमाज, विभिन्न धार्मिक कर्मकांडों, कठिन योग साधनाओं आदि की कटु आलोचना की है तो दूसरी ओर भावविभोर होकर परमात्मा रूपी प्रिय के प्रति अपने प्रेम का निवेदन किया है। एक ओर उन्होंने अक्खड़ता से भरी हुई गर्वोक्तियाँ की हैं तो दूसरी ओर अत्यंत विनम्र वचन कहे हैं। उन्होंने बड़े चमत्कारपूर्ण रूपक बाँधे हैं और उलटबाँसियों की रचना की है। कबीर की भाषा का मूल तो पूर्वी हिंदी है, किंतु उसमें अनेक बोलियों का मिश्रण होने के कारण उसे 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा जाता है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनकी भाषा बहुत सक्षम है। भाषा पर उनका पूरा अधिकार है। वे उसे जैसा चाहते हैं वैसा ही मोड़ दे देते हैं। इसीलिए हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'भाषा का डिक्टेटर' कहा है।

कबीर ने अपनी वाणियों में हर प्रकार की रूढ़ियों, संकीर्णताओं पर प्रहार किया है। वे जाति, धर्म के आधार पर किसी प्रकार के विभेद को स्वीकार नहीं करते। वे परमात्मा को एक मानते हैं :

अरे भाई दोइ कहा सो मोहि बतायौ।
बिचिहि भरम का भेद लगावौ।।टेक।।
जोनि उपाइ रची है धरनीं, दीन एक बीच भई करनी।
रॉम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई।।
कहै कबीर चेतहु रे भौंदु, बोलनहारा तुरक न हिंदू।।

अर्थात भाइयों तुम लोगों ने भ्रमवश परमात्मा के बीच में जो अंतर कर रखा है, तुम यह बताओ कि परमात्मा अलग-अलग कहाँ हैं? अगर भेद है तो उसने दो पृथ्वी का निर्माण क्यों नहीं

किया? परमात्मा एक ही है। उन्हीं की अराधना अलग-अलग तरह से की जाती है। हिंदू और मुसलमान दोनों ने भेद कर रखा है। एक राम को जपता है दूसरा रहीम को। एक माला का इस्तेमाल करता है दूसरा तसबी का। लेकिन ये दोनों इसी भेद में उलझे रह गए। कबीर कहते हैं कि हे अज्ञानियों चेतो; परमात्मा के स्तर पर तुर्क (मुसलमान) और हिंदू का कोई भेद नहीं है। वह एक ही है।

रैदास– रैदास रामानंद के शिष्य थे और तथाकथित निम्न जाति से थे। उन्होंने अपनी जाति का बार-बार उल्लेख किया है– 'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार।' ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में वे विद्यमान थे। धन्ना और मीरां ने बड़े आदर के साथ अपनी रचनाओं में रैदास का उल्लेख किया है। उनकी कोई व्यवस्थित रचना (पुस्तक) उपलब्ध नहीं है, केवल फुटकल वाणियाँ ही मिलती हैं। 'गुरुग्रंथसाहब' में इनके लगभग सौ पद मिलते हैं। इन रचनाओं में रैदास के अत्यंत शांत, निरीह और विनम्र व्यक्तित्व की आडंबरहीन सरल अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरणस्वरूप :

जो तुम तोरौ रांम मैं नहीं तोरौं।
तुम सौं तोरि कवन सूं जोरौं।।
तीरथ ब्रत का न करौं अंदेसा, तुम्हारे चरन कवल का भरोसा।।
जहां जहां जाउं तहां तुम्हारी पूजा, तुम्ह सा देव अवर नहीं दूजा।।
मैं हरि प्रीति सबनि सूं तोरी, सब स्यौं तोरी तुम्हैं स्यूं जोरी।।
सब परहरि मैं तुम्हारी आसा, मन क्रम बचन कहै रैदासा।।

अर्थात हे परमात्मा (राम) तुम अगर मुझसे संबंध तोड़ भी लो तो भी मैं नहीं तोड़ सकता। तुमसे संबंध तोड़कर मैं किससे संबंध जोड़ूँ? मुझे तीर्थ और त्योहारों से कोई उम्मीद नहीं है, मेरा भरोसा तो सिर्फ तुम पर है। मैं जहाँ कहीं भी जाऊँ तुम्हारी ही पूजा करता हूँ। तुम्हारे समान कोई दूसरा देव नहीं है। हे मेरे परमात्मा मैंने सबसे प्रेम तोड़कर यानी संसार के सभी माया-मोह छोड़कर तुमसे एकनिष्ठ प्रेम करने लगा हूँ। रैदास कहते हैं कि वे मन, कर्म और वाणी से प्रभु के शरण में चले गए हैं।

गुरु नानक (1469-1538 ई.)– गुरु नानक का जन्म लाहौर के पास तलवंडी नामक गाँव में एक खत्री परिवार में हुआ था। घर में व्यवसाय होता था। पिता ने उन्हें व्यवसाय में लगाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। बचपन से ही नानक का झुकाव आध्यात्मिकता की ओर था। पंजाब में मुसलमान बहुत पहले से आकर बस गए थे और उनका प्रभाव वहाँ के लोगों के जीवन पर पड़ने लगा था अतः नानक ऐसी उपासना पद्धति की ओर आकर्षित हुए जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों स्वीकार कर सकें। उन्होंने घर-बार छोड़कर दूर-दूर तक यात्रा और संत-संगति की जिससे उन्हें अपनी उपासना पद्धति स्थिर करने में सहायता मिली। अंततः उन्होंने पंजाब में निर्गुण उपासना का प्रचार किया और वे सिख संप्रदाय के आदिगुरु हुए।

गुरु नानक की वाणियों का संग्रह 'आदिग्रंथ' के महला नामक खंड में हुआ है, जिसमें उनके पद, साखियाँ, जपुजी, आसादीवार, रहिरास और सोहिला संगृहीत हैं। नानक में कबीर जैसी अक्खड़ता नहीं है, बल्कि रैदास जैसी विनम्रता और निरीहता है। जाति-पाँति, छुआछूत तथा बाह्य आचारों पर आक्रमण करने वाली उक्तियाँ उनकी कविता में भी मिलती हैं किंतु उनमें भुक्तभोगी का आक्रोश और प्रखरता नहीं है, क्योंकि ऊँची जाति में उत्पन्न होने के कारण उन्होंने इनका दंश नहीं भोगा था। वे जीवन की सार्थकता भगवान के निरंतर ध्यान और नाम-स्मरण में ही मानते थे :

रैण गँवाई सोई कै, दिवसु गवाँइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है, कउड़ी बदले जाइ।।

अर्थात मैंने रात सोकर और अपना दिन खा-खाकर यानी सांसारिक भोग-विलास में रत रहकर गँवा दिया। हीरा जैसे मनुष्य जन्म को कौड़ी में बदल दिया। तात्पर्य यह कि इस जीवन को प्रभु जैसे हीरा को पाने में लगाया जा सकता था, लेकिन वह सांसारिक तुच्छता में बीतता जा रहा है।

दादूदयाल (1544-1602 ई.)– इनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था। इनकी जाति के संबंध में मतभेद है। कुछ लोग उन्हें ब्राह्मण, कुछ लोग मोची और कुछ लोग धुनिया मानते हैं। इनके संप्रदाय में इन्हें ब्राह्मण ही माना जाता है। यद्यपि इन्होंने अपने अलग संप्रदाय की स्थापना की, किंतु इनके दोहे और पद कबीर जैसे ही हैं। इनकी वाणियों का संग्रह 'हरडेबानी' या 'अंग बंधु' के नाम से किया गया है। इनकी दूसरी रचना 'कायाबेलि' है। इन्होंने भी अपनी कविता में ईश्वर की व्यापकता, गुरू की महिमा, जाति-पाँति का निराकरण, हिंदू-मुस्लिम अभेद, संसार की अनित्यता, आत्मबोध आदि का कथन किया है, किंतु खंडन-मंडन में इनकी रुचि नहीं थी। इनका व्यक्तित्व विनम्रता और मधुरता से परिपूर्ण था। जहाँ इन्होंने निर्गुण-निराकार निरंजन के प्रति अपने प्रेम का निवेदन किया है, वहीं ये सूफी मत से भी प्रभावित दिखाई देते हैं। इन्होंने प्रेम को ही परमात्मा का रूप और जाति बताया है। इनकी भाषा राजस्थानी के पुट वाली पश्चिमी हिंदी है। इन्होंने कुछ पद गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी में भी लिखे हैं। गरीबदास और मिसकीन दास इनके पुत्र थे। दादूदयाल अपनी भक्ति के संदर्भ में लिखते हैं :

भाई रे! ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ हमारा गह पूरा अबरन एक आधारा।
बाद-बिबाद काहु सौं नाहीं मैं हूँ जग थें न्यारा।।
समदृष्टि सूँ भाई सहज में आपहि आप बिचारा।
मैं, तैं, मेरी यह मति नाहीं निरबैरी निरबिकारा।।
काम कल्पना कदे न कीजै पूरन ब्रह्म पियारा।
एहि पथि पहुँचि पार गहि दादू सो तब सहज संभारा।।

अर्थात भाइयों मेरी साधना का मार्ग ऐसा है जिसमें किसी प्रकार का कोई द्वैत नहीं है, उसका आधार पूरी तरह एक निर्गुण ब्रह्म है। इस राह पर चलकर अपने को भाग्यवान मानता हूँ और किसी से वाद-विवाद करने की जरूरत नहीं समझता। बिना किसी से कोई भेद-भाव किए मैं उस परमब्रह्म का स्मरण करता हूँ। मेरा-तेरा का भेद नहीं कर, बिना किसी बैर भाव के निर्विकार ब्रह्म की साधना करनी चाहिए। सांसारिक विषय-वासना में न पड़कर पूर्ण ब्रह्म से प्रेम करो। दादू कहते हैं इस मार्ग का अनुसरण कर सहज ही भवसागर पार किया जा सकता है।

सुंदरदास (1596-1689 ई.)– यह धौसा (राजस्थान) के खंडेलवाल बनिए थे। इन्होंने बहुत छोटी अवस्था में दादू का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। इन्हें अच्छी शिक्षा मिली थी। इन्होंने काशी में रहकर दीर्घकाल तक शास्त्राभ्यास किया था जिसका प्रतिबिंब इनकी कविता में दिखाई देता है। यह एकमात्र ऐसे निर्गुणधारा के कवि हैं जो शास्त्रों और काव्यरीति से बहुत अच्छी तरह परिचित थे और देशाटन के कारण विभिन्न प्रदेशों के आचार-विचार का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इन्होंने मँजी हुई ब्रजभाषा में साहित्यिक गुणों से युक्त सरस काव्य की रचना की है, लेकिन जहाँ कहीं इन्होंने अपनी विद्वता के प्रदर्शन का प्रयत्न किया है वहाँ

इनकी कविता कृत्रिम हो गई है। इन्होंने छोटे-बड़े अनेक ग्रंथ लिखे थे जिनमें से 'सुंदर विलास' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सुंदरदास की निम्नलिखित पंक्तियों को देखिए। इन पंक्तियों में उनके शास्त्रज्ञान की स्पष्ट झलक है :

ब्रह्म तें पुरूष अरू प्रकृति प्रकट भई,
प्रकृति तें महतत्त्व, पुनि अहंकार है।
अहंकार हू तें तीन गुण सत, रज, तम
तमहू ते महाभूत विषय पसार है।
रजहू तें इंद्री दस पृथक भई,
सतहू में मन, आदि देवता विचार है।
एसे अनुक्रम करि शिष्य सूँ कहत गुरू
सुंदर सकल यह मिथ्या भ्रमजार है।

अर्थात ब्रह्म से मनुष्य तथा प्रकृति की उत्पत्ति हुई और प्रकृति से ही आत्मा तथा अहंकार का जन्म हुआ। फिर अहंकार से तीन गुण – सतगुण, रजोगुण और तमोगुण का विकास हुआ। तमोगुण के अंतर्गत इस संसार की तमाम विषय और वासना का प्रसार है। रजोगुण से दसों इंद्रियों (पाँच ज्ञानेंद्री और पाँच कर्मेंद्री) निकली। सतगुण में ईश्वर की अराधना करने वाला मन है। गुरूजन अपने शिष्यों को इस भेद-उपभेद को समझाते है। सुंदरदास कहते हैं यह सब झूठ का भ्रमजाल है।

मलूकदास (1574-1682 ई.)– इनका जन्म कड़ा, इलाहाबाद के एक खत्री परिवार में हुआ था। यह औरंगजेब के समकालीन थे। इनके संबंध में अनेक चमत्कारपूर्ण कथाएँ प्रचलित हैं। यह निर्गुण परमात्मा को दिल के अंदर खोजने का उपदेश देते थे। इनकी दो प्रसिद्ध पुस्तकें हैं – 'रत्नखान' और 'ज्ञानबोध'। इन्होंने हिंदू-मुसलमान – दोनों को समान भाव से उपदेश दिया। अतः इनकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता मिलती है। इनकी भाषा व्यवस्थित और साहित्यिक है। इनकी रचना का एक उदाहरण देखिए :

सबहिन के हम सबै हमारे। जीव जंतु मोहि लगैं पियारे।।
तीनों लोक हमारी माया। अंत कतहुँ से कोई नहीं पाया।।
छतिस पवन हमारी जाति। हमहीं दिन और हमहिं राति।।
हमहीं तरवर कीट पतंगा। हमहीं दुर्गा हमहीं गंगा।।
हमहीं मुल्ला हमहीं काजी। तीरथ, बरत हमारी बाजी।।
हमहीं दशरथ हमहीं राम। हमरै क्रोध औं हमरै काम।।
हमहीं रावन हमहीं कंस। हमहीं मारा अपना बंस।।

प्रस्तुत पंक्तियों में परमब्रह्म की सर्वव्याप्ति और उन्हीं की माया से समस्त जगत की उत्पत्ति को दर्शाया गया है। इन पंक्तियों में ब्रह्म की महिमा का बखान उन्हीं से कराया गया है। वे कहते हैं कि संसार में जितने जीव जंतु हैं उन सबमें मैं ही हूँ। मेरे ही ये अलग-अलग रूप हैं और सभी मुझे प्यारे लगते हैं। तीनों लोक जिसके आदि-अंत का अनुमान कोई नहीं लगा पाया सब मेरी ही माया है। छत्तीस पवन, दिन और रात मैं ही हूँ। मैं ही कीट-पतंग हूँ, मैं ही दुर्गा, मैं ही गंगा हूँ। मुल्ला और काजी मैं ही हूँ। तीर्थ और ब्रत मेरे लिए ही है। दशरथ और राम – दोनों मैं ही हूँ। काम और क्रोध का निर्माण मैंने ही किया है। रावण और कंस भी मेरे ही रूप हैं। अपने वंश का नाश मैं ही करता हूँ। चूँकि ब्रह्म से ही सब कुछ निकला है अतः सब उन्हीं के वंशज हैं। वे ही संहारक हैं, इस प्रकार वे अपने वंश का नाश खुद ही कर रहे हैं। यहाँ ईश्वर के निर्माणकर्ता, सर्वव्याप्त और संहारकर्ता रूप का वर्णन किया गया है।

बोध प्रश्न-1

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर का चुनाव दिए गए विकल्पों में से कीजिए।

(i) हिंदी संतकाव्य परंपरा का आरंभ किस भक्त कवि से माना गया है?

(क) नामदेव (ख) जयदेव (ग) कबीर (घ) रैदास

(ii) 'हरडेबानी' किसकी रचना है?

(क) सुंदरदास (ख) नानक (ग) दादूदयाल (घ) मलूकदास

(iii) निर्गुणधारा के संत कवियों में से शास्त्र और काव्यरीतियों का सबसे अच्छा ज्ञान किन्हें था?

(क) कबीर (ख) रैदास (ग) सुंदरदास (घ) इनमें से कोई नहीं

(iv) पीपा, धना, सुरसरी आदि संत कवियों के गुरू कौन थे?

(क) जयदेव (ख) शंकराचार्य (ग) अक्षर अनन्य (घ) रामानंद

(v) 'बीजक' में कितने खंड हैं?

(क) दो (ख) तीन (ग) पाँच (घ) छः

(ख) 'संतकाव्य' का परिचय पाँच पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) 'ज्ञानमार्गी' शाखा में 'ज्ञान' की अवधारणा स्पष्ट कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

4.4 निर्गुण संत कवियों का समाज-सुधारक रूप

निर्गुण संत कवि प्रत्येक मनुष्य को साधना का अधिकारी मानने के साथ ही सामाजिक स्तर पर जातिगत-धर्मगत भेदभाव को स्वीकार नहीं करते थे। वे मनुष्य-मात्र को ईश्वर की संतान मानते थे और इसी विचार के तहत वे किसी भी किस्म के दंभ और वर्जना के प्रति आलोचनात्मक रूख रखते थे। उनकी कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति बार-बार हुई है। उनके समाज-सुधारक रूप के प्रमुख पक्षों का विवेचन नीचे किया जा रहा है।

4.4.1 पददलित जातियों में आत्मसम्मान का उदय

भारतीय समाज बहुत दिनों से जाति-विभाजित समाज रहा है। इसलिए भारतीय सामाजिक संरचना में जातीय श्रेष्ठता या निकृष्टता का भाव मिलता है। ऊँच-नीच तथा जातियों में विभाजित समाज मे एक वर्ग हमेशा से शोषित होता चला आ रहा था। निम्न समझी जाने वाली इन जातियों को बराबर अवमानना की दृष्टि से देखा गया और इन्हें कुचला-दबाया गया। इस अन्याय के प्रति इनमें विद्रोह का भाव बराबर पनपता रहा। निर्गुणधारा के ज्ञानमार्गी कवियों की विद्रोही वाणी के रूप में इसी का विस्फोट हुआ है। इनकी प्रतिभा और भगवद्भक्ति ने इन्हें समाज में सम्माननीय स्थान दिलाया। नीचे उद्धृत रैदास के पद इसी की ओर संकेत कर रहे हैं :

जाके कुटुम्ब सब ढोर ढोवन्त
फिरहिं अजहुँ बनारसी आसपासा।
आचार सहित विप्र करहि डंडउति
तिन तनै रविदास दासानुदासा।

रैदास कहते हैं कि जिनके सगे संबंधी आज भी बनारस के आसपास पशुओं को ढ़ोने का काम करते हैं, उसी रैदास को उनके ज्ञान और भक्ति के कारण ब्राह्मण भी दास भाव से आदर सहित प्रणाम करते हैं।

4.4.2 निर्गुण संतकाव्य की सामाजिक-सांस्कृतिक भावभूमि का वैशिष्ट्य

हिंदी का भक्तिकालीन काव्य एक विशेष सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति की उपज है। इसलिए भक्तिकाव्य की सभी धाराओं और शाखाओं में कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो सबमें समान रूप से मिलती हैं। लेकिन इनमें से प्रत्येक धारा में कुछ ऐसी विशिष्टता थी जो उनके निजी वैशिष्ट्य को निर्मित करती है। निर्गुणधारा के अधिकांश संत कवि तथाकथित नीची मानी जाने वाली जातियों में जन्मे थे जिन्हें न जाने कब से दबाया-कुचला गया था। अतः इन संतों की भावभूमि विद्रोहात्मक है। ये जाँति-पाँति, छुआछूत, ऊँच-नीच, बाह्याचार, कर्मकांड आदि के घोर विरोधी हैं और मानते हैं कि :

जाति पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।

4.5 निर्गुण संतकाव्य का भाव पक्ष

4.5.1 संतकाव्य में 'राम'

कबीरदास रामानंद के शिष्य थे। रामानंद के श्री संप्रदाय का मंत्र 'ऊँ रामायनमः' है। कबीरदास को राम नाम वहीं से मिला। रामानंद उदार गुरु थे। उन्होंने अपने सभी शिष्यों को उन्मुक्त रखा। इसलिए कबीर ने राम नाम अपने गुरु से ले तो लिया, लेकिन उसका अर्थ अपने ढंग से किया। कबीर के लिए राम दशरथ पुत्र राम नहीं है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है :

दशरत सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।

तब कबीर के लिए राम क्या हैं? केवल कबीर के ही नहीं बल्कि सभी संतों के लिए राम का अर्थ निर्गुण निराकार ब्रह्म है।

4.5.2 संतों के दार्शनिक सिद्धांत

अधिकांश संतों को व्यवस्थित शिक्षा नहीं मिली थी। उन्होंने इसकी पूर्ति विभिन्न प्रभावों को ग्रहण करके की थी। उन पर भारतीय ब्रह्मवाद, हठयोगियों की साधना, वैष्णवों की अहिंसा और प्रपत्तिवाद, सूफियों की प्रेम भावना, मुसलमानों के एकेश्वरवाद आदि का प्रभाव पड़ा था। इन प्रभावों को उन्होंने अपने ढंग से ग्रहण किया था। इसलिए उनके दार्शनिक सिद्धांत अपनी विशिष्टता और नवीनता लिए हुए हैं। यह बात नीचे के विवेचन से स्पष्ट हो जाएगी :

ब्रह्म : ब्रह्म की दार्शनिक अवधारणा ऐसी है जिस पर भारत में अत्यंत प्राचीन काल से विचार होता आया है और उसका कोई सर्वमान्य स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया। वेदांतियों के लिए ब्रह्म वह परम सत्ता है जो अनंत, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है। संत कवियों ने इस ब्रह्म को स्वीकार करते हुए उसमें मुस्लिम एकेश्वरवाद को भी मिला कर एक नया स्वरूप गढ़ा है।

लोका जानि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई।

कबीर कहते हैं तुम सब कुछ जानते हुए भी भ्रम में न पड़ो। परमात्मा से ही संसार की उत्पत्ति हुई है और संसार में हर जगह वही है। हर मनुष्य के हृदय में परमात्मा का वास है।

ब्रह्म का यह स्वरूप अन्य संतों में भी मिलता है, यद्यपि इस स्वरूप में अन्य संतों में थोड़ा-बहुत अंतर भी मिलता है।

जीव : अद्वैतवादी दर्शन में माया संवलित आत्मा को जीव कहते हैं। कबीर आदि संतों की मान्यता भी ऐसी ही है। एकेश्वरवाद के अनुरूप खुदा और बंदे की द्वैत मान्यता संतों को स्वीकार्य नहीं है। ब्रह्म या परमात्मा से जीव जो अलग दिखाई देता है उसका कारण माया अथवा अज्ञान है, अन्यथा जीव ब्रह्म में से ही उत्पन्न हुआ है और अंततः उसी में उसे लय हो जाना है।

पाणीं ही तें हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, कछु कह्या न जाइ।।

अर्थात जिस प्रकार पानी से बर्फ बनता है और फिर वह बर्फ अपना अस्तित्व खोकर पानी बन जाता है, उसी प्रकार परम ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति हुई है। जीवात्मा परमात्मा का ही एक रूप है, जैसे बर्फ पानी का। बर्फ की तरह जीवात्मा का अस्तित्व एक दिन मिट जाता है और वह परमात्मा में विलीन हो जाता है।

जगत : संतों की जगत की धारणा अद्वैतवादियों जैसी है। कबीरदास ने जगत को परमात्मा का प्रतिबिंब माना है। जब ब्रह्म अपनी लीला का विस्तार करता है तब इस नामरूपात्मक जगत की सृष्टि होती है, जिसे वह इच्छा होने पर अपने में ही समेट लेता है। शंकराचार्य ने ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या कहा था। उन्होंने इस संसार को स्वप्नवत बताया। कबीरदास का भी यही मत है। वे संसार को क्षणभंगुर तथा यहाँ के समस्त व्यवहार को भ्रम मानते हैं :

यहु ऐसा संसार जैसा सैबल फूल।
दिन दस के व्योवहार को, झूठै रंगि न भूल।।

अर्थात जैसे सेमल के फूल का आकर्षण क्षणिक है, वैसे ही इस संसार का भी है। यहाँ के

सभी संबंध कुछ समय के लिए हैं। यहाँ के झूठे आकर्षण के भ्रम में पड़कर ब्रह्म को मत भूलो।

माया : कबीर आदि संतों ने भी इस संसार को मायाकृत माना है। उनके अनुसार जो माया में लिपटे रहते हैं वे दुःख में पड़े हुए भी उसे समझ नहीं पाते। मायालिप्त मनुष्य को परमात्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर माया के पाँच पुत्र हैं। माया ही वासनाओं को जन्म देती है। वह पाखंड की जननी है। वह अनेक रूप धारण करके मनुष्य को ठगती रहती है। स्पष्ट है कि कबीर आदि संतों ने माया के संबंध में जो कुछ कहा है वह वेदांत द्वारा निर्धारित माया के स्वरूप से मेल खाता है।

कबीर माया को ऐसी पापिन के रूप में चित्रित करते हैं जो मनुष्य को परमात्मा के मार्ग से भटकाती है। वह राम का सुमिरन नहीं करने देती :

कबीर माया पापणीं, हरि सूँ करे हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम।।

मोक्ष : मोक्ष का अर्थ है मुक्ति या छुटकारा। माया या अविद्या की निवृत्ति ही मोक्ष है। ऐसा हो जाने पर आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाती है। कबीर आदि संतों की गर्वोक्तियों में मोक्ष प्राप्ति के संकेत विद्यमान हैं। एक स्थान पर कबीर ने लिखा है :

हम न मरैं मरिहैं संसारा, हँम कूँ मिल्या जियावनहारा।।

इन पंक्तियों में कबीर ने परमात्मा के साक्षात्कार के बाद अपने तत्व ज्ञान को रखा है। परमात्मा से जीव के मिलन के बाद जब कोई भेद नहीं बच जाता ऐसी स्थिति में जीवन-मरण का प्रश्न ही नहीं रह जाता, इसीलिए कबीर कहते हैं कि हमें अब हमेशा-हमेशा के लिए जिलाने वाला मिल गया है।

4.5.3 निर्गुण संतकाव्य में रहस्यवाद

परम सत्ता की भावात्मक अनुभूति को रहस्यवाद कहा जा सकता है। रहस्यवाद संत काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। संत काव्य में इसके दो रूप मिलते हैं– हठयौगिक रहस्यवाद और सूफियों से प्रभावित प्रेमसंलक्षण रहस्यवाद। हठयौगिक रहस्यवाद में 'जो ब्रह्मांड में है वही पिंड में है' के सिद्धांत को मानकर साधक अपनी काया को साधता है और परमानंद को प्राप्त कर उसमें लीन हो जाता है। कुंडलिनी, विभिन्न चक्र, अनहद नाद इत्यादि की चर्चा इस प्रकार के रहस्यवाद में अक्सर की जाती है तथा अलौकिक सिद्धियों का दावा किया जाता है। हिंदी के संत कवियों के काव्य में इस प्रकार के रहस्यवाद के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं। कबीर का यह प्रसिद्ध पद इसी प्रकार के रहस्यवाद का उदाहरण है :

रस गगन गुफा मैं अजर झरै।
अजपा सुमिरन जाप करै।।
बिनु बाजा झनकार उठै जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै।
बिनु चंदा उजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा नजरि परै।।
दसवै द्वारै ताड़ी लागी अलग पुरुख जाकौ ध्यान धरै।
काल कराल निकटि नहिं आवै काम-क्रोध मद लोभ जरै।।
जुगन-जुगन की त्रिखा बुझांनीं करम भरम अघ-ब्याधि टरै।
कहै कबीर सुनौं भाई साधौ अमर होई कबहूँ न मरै।।

अर्थात साधक अजपाजाप साधना करते हुए उस परम स्थिति तक पहुँच गया है जहाँ उसके सहस्त्रार से अमृत झरने लगा है। उसे तरह-तरह के पारलौकिक अनुभव हो रहे हैं। ध्यान लगाने पर बिना किसी वाद्ययंत्र के झंकार सुनाई देता है। बिना चंद्रमा के उजाला फैला हुआ है। यह प्रकाश स्वप्रकाशित शुद्ध जीवात्मा (हंसा) के कारण है। सहस्त्रार में स्थित दसवें द्वार में पहुँचने पर जिसका ध्यान लगाता है उस परमात्मा का साक्षात्कार होता है। इस स्थिति में पहुँचने पर काम-वासना, लोभ का विनाश हो जाता है, काल उसके निकट नहीं आता है। पापजनित व्याधियों से मुक्त हो जाता है। कबीर कहते हैं ऐसी स्थिति में साधक अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

4.6 निर्गुण संतकाव्य पर अन्य दर्शनों का प्रभाव

4.6.1 सूफियों के प्रेमदर्शन का प्रभाव

सूफी परमात्मा को प्रेमस्वरूप मानते हैं और उसे प्रेम के माध्यम से ही प्राप्त करते हैं। सूफियों के इस प्रेमदर्शन का प्रभाव संत कवियों पर भी पड़ा है और इसने संत काव्य में प्रेमसंलक्षण रहस्यवाद को जन्म दिया है। सूफियों से प्रभावित होते हुए भी संतों की प्रेम पद्धति भारतीय ही रही है। अर्थात उन्होंने परमात्मा को प्रियतम माना है और स्वयं को प्रियतमा। 'हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया' कहते समय कबीर इसी प्रेम संबंध की बात करते हैं। इस संबंध को लेकर संयोग और वियोग दोनों के चित्र खड़े किए गए हैं। संयोग की अपेक्षा वियोग के चित्रों में अधिक गहराई है :

इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचा तेल ज्यूँ, तब मुख देखौं पीव।।

अर्थात साधक ने शरीर रूपी दीपक में अपनी आत्मा की बाती तथा रक्त को तेल के रूप में इस्तेमाल करते हुए प्रकाश किया है ताकि अपने प्रियतम (परमात्मा) का मुख देख सके।

परमात्मा के साथ पति-पत्नी संबंध के अतिरिक्त उसे पिता, माता, सखा आदि के रूप में भी संतों ने देखा है और यह भी रहस्यवाद ही है।

4.6.2 नाथों-सिद्धों का प्रभाव

निर्गुण संत काव्य पर नाथों-सिद्धों का गहरा प्रभाव है। संत कवियों ने नाथों-सिद्धों से न केवल काव्य-वस्तु बल्कि काव्यगत तत्व भी लिया है। संत काव्य के तमाम पारिभाषिक शब्द उन्हीं से आए हैं। यह अलग बात है कि संतों ने उन शब्दों में से अनेक की व्याख्या अपने ढंग से की है। उदाहरण के लिए 'सहज' शब्द को प्रस्तुत किया जा सकता है। सहजिया संप्रदाय के सिद्धों में यह शब्द जब बहुत सस्ता और भ्रष्ट हो गया तो कबीरदास ने इसे नया अर्थ देते हुए लिखा :

सहज सहज सबकौ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै बिषिया तजी, सहज कही जै सोइ।।

हर कोई सहज-सहज कहता है पर 'सहज' को कोई नहीं जानता। जिस व्यक्ति ने समस्त विषय-वासना का त्याग कर दिया है वही सहज है।

4.6.3 वैष्णव चिंतन-परंपरा का प्रभाव

निर्गुण धारा के संत कवियों पर वैष्णव चिंतन-परंपरा का गहरा प्रभाव पड़ा है। वैष्णवों के प्रति

कबीर आदि संतों की इस अतिरिक्त श्रद्धा का कारण यह है कि उन्हें राम-गोपाल आदि नाम ही वैष्णवों से नहीं मिले हैं अपितु इनके प्रति भक्ति भावना भी वैष्णवों से ही मिली है। निर्गुण निराकार ब्रह्म के उपासक होने पर भी जब संत भक्ति के प्रभाव में बहने लगते हैं तो वे सगुण उपासक की तरह लगने लगते हैं। संतों ने सात्विक और सहज जीवन जीने पर अत्यधिक बल दिया है। यह वैष्णव प्रभाव ही है।

बोध प्रश्न-2

(क) कबीर के माया संबंधी विचारों का उल्लेख पाँच पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

(ख) निर्गुण संतकाव्य की सामाजिक-सांस्कृतिक भावभूमि की विशेषताओं का सोदाहरण उल्लेख कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) संतकाव्य में अभिव्यक्त ब्रह्म और जीव से संबंधी मुख्य स्थापनाओं का उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(घ) संतकाव्य में अभिव्यक्त रहस्यवाद क्या है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.7 निर्गुण संतकाव्य का अभिव्यंजना पक्ष

ज्यादातर संत कवि पढ़े लिखे नहीं थे इस कारण से उनकी भाषा व्यवस्थित नहीं है। वे मुख्य रूप से ऐसी भाषा का इस्तेमाल करते थे जिसमें कि वे अपनी बातें जनता को समझा सकें। यही कारण है कि इनकी भाषा में विभिन्न बोलियों की मिलावट है। कबीर की ऐसी ही भाषा के लिए 'सधुक्कड़ी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। लेकिन संत कवियों में से ही सुंदरदास को अच्छी शिक्षा मिली थी जिसका प्रभाव उनकी रचनाओं में भी दिखाई देता है। उनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा के गुणों से युक्त है।

संत कवियों ने जहाँ जनता को संबोधित किया है वहाँ भाषा सहज है, लेकिन जहाँ उन्होंने साधनात्मक अनुभव को व्यक्त किया है वहाँ उनकी भाषा में साधना के प्रतीकात्मक शब्दों का बहुतायत में इस्तेमाल हुआ है। साधना के ये प्रतीकात्मक शब्द योग-क्रिया से संबंधित हैं तथा संतों ने इसे नाथों-सिद्धों से ग्रहण किया है। कबीर के साधनात्मक अनुभव वाले पदों में इसे देखा जा सकता है। कबीर ने अपनी कविता में उलटबाँसी का भी प्रयोग किया है। उलटबाँसी की पंक्तियों का जो सामान्य अर्थ निकलता है वह जागतिक अनुभवों के उलट होता है, लेकिन जब उसकी प्रतीकात्मकता को समझ लेते हैं तो वह अनुभवगम्य हो जाता है। संतों ने अपने उद्‌गार मुख्य रूप से दोहों से बनाई गई साखियों में अथवा गेय पदों में व्यक्त किए हैं।

बोध प्रश्न 3

संतकाव्य के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.8 सारांश

- निर्गुण भक्ति काव्यधारा की दो शाखाएँ – ज्ञानमार्गी संतकाव्य काव्यधारा तथा प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा हैं। जिन निर्गुण कवियों ने ब्रह्म प्राप्ति का साधन मुख्य रूप से ज्ञान को बनाया वे ज्ञानमार्गी तथा जिन्होंने ब्रह्म प्राप्ति का साधन प्रेम को बनाया वे प्रेममार्गी कहलाए। ज्ञानमार्गी निर्गुण कवियों को संत कवि तथा प्रेममार्गी निर्गुण कवियों को सूफी कवि भी कहा जाता है।
- हिंदी के संत कवियों में – नामदेव, कबीर, रैदास, गुरू नानक, दादू दयाल, सुंदरदास, मलूकदास आदि प्रमुख हैं।
- संत कवियों ने ब्रह्मप्राप्ति की साधना के साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक रूढ़ियों, संकीर्णताओं तथा भेद-भाव की आलोचना अपनी कविताओं में की है।
- कबीर आदि संत कवियों ने साधना के दार्शनिक पक्ष यथा – ब्रह्म, जीव, माया, मोक्ष आदि पर भी विचार करते हुए काव्य रचनाएँ की हैं।
- संत काव्यधारा पर अन्य धार्मिक समुदायों का भी प्रभाव देखा गया है। संत कवियों ने अलग-अलग धार्मिक समुदाय के साकारात्मक तत्वों को आत्मसात किया, जिनमें सिद्ध, नाथ, सूफी, वैष्णव आदि प्रमुख हैं।
- उन्होंने अपनी कविताओं में प्रतीकात्मक भाषा तथा उलटबाँसियों का प्रयोग किया। इनकी काव्यभाषा में विभिन्न भाषाओं और बोलियों का मिश्रण पाया जाता है। इनकी रचनाएँ प्रायः मुक्तक में है।

4.9 शब्दावली

संत कवियों ने अनेक पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किए हैं, जिनमें से प्रमुख शब्द और उनके अर्थ यहाँ दिए जा रहे हैं।

अद्वैतवाद – शंकराचार्य के द्वारा स्थापित वेदांत का वह दार्शनिक सिद्धांत, जिसके अनुसार सत्य केवल ब्रह्म है, बाकी सब कुछ मिथ्या या भ्रम है।

अनहद नाद – कुंडलिनी जब जाग्रत होकर ऊपर को उठती है तो उससे विस्फोट होता है, जिसे नाद कहते हैं। यह व्यक्ति साधक में होता है। इसी का विराट रूप ब्रह्मांड में व्याप्त है जिसे अनहद या अनाहद नाद कहते हैं।

अमृत रस – ब्रह्मरंध्र के सहस्त्रार कमल में स्थित त्रिकोणात्मक योनि में से झरने वाला रस।

अविद्या – माया, भ्रम, अज्ञान।

आत्मा – ब्रह्म का शुद्ध रूप।

इंगला-पिंगला – मनुष्य की रीढ़ की हड्डी में से जुड़ने वाली दो नाड़ियाँ।

उन्मुनि रहनी – मन के स्थिर हो जाने की अवस्था।

उलटबाँसी – प्रतीकों का सहारा लेकर लोक-व्यवहार से उलटी बात कहना।

एकेश्वरवाद – मुसलमानों का खुदावाद। खुदा ही एक मात्र सत्य है और उसी ने यह सृष्टि रची है।

कुंडलिनी – रीढ़ की हड्डी के प्रारंभ होने के स्थान पर जो त्रिकोण या अग्नि चक्र है, उसमें स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वृत्तों में सर्पिणी की भाँति लपेटने वाली चीज को कुंडलिनी कहते हैं। योगी साधना के द्वारा इसे जगाता है।

चक्र – रीढ़ की हड्डी के प्रारंभ में स्थित अग्निचक्र से लेकर भौंहों के मध्य में स्थित आज्ञाचक्र तक मनुष्य के शरीर में छह चक्रों की कल्पना की गई है। कुंडलिनी जाग्रत होकर इन्हीं चक्रों में से होकर ऊपर की ओर जाती है। इन छह चक्रों के बाद मस्तक में शून्य चक्र की कल्पना की गई है जहाँ जीवात्मा को पहुँचा देना योगों का चरम लक्ष्य है। इसी स्थान पर सहस्त्र दल वाला एक कमल है जिसे सहस्त्रार चक्र, गगन मंडल, कैलास आदि कहते हैं। संत मत में इसके भी ऊपर एक अष्टम चक्र सुरति-कमल की कल्पना की गई है।

जीव – आत्मा का मायालिप्त रूप।

निरंजन – ब्रह्म।

निरति – बाहरी प्रवृत्ति की निवृत्ति।

निर्गुण – सत्व, रज और तम गुणों से परे रहने वाला ब्रह्म।

ब्रह्म – शुद्ध परम सत्ता।

ब्रह्मरंध्र – तालु के नीचे स्थित रंध्र। इसमें से अमृत झरता है। इसे चंद्रमा भी कहते हैं।

माया – अविद्या या अज्ञान।

शून्य – जीवात्मा की द्वंद्व रहित शुद्ध अवस्था।

सुषुम्ना – रीढ़ की हड्डी के बीचों बीच गुजरने वाली एक नाड़ी।

हंस – मुक्त आत्मा।

साखी – साखी शब्द का अर्थ 'साक्षी' होता है। साखी के अंतर्गत दोहों में लिखी गई कबीर की वे रचनाएँ आती हैं जिसमें उन्होंने अपने आत्मज्ञान के अनुभव का बयान किया है।

सबद – सबद के अंतर्गत कबीर की वे रचनाएँ आती हैं जो गेय पदों में हैं। इनमें मुख्य रूप से भक्ति तथा समर्पण के भाव व्यक्त हुए हैं।

रमैनी – रमैनी की रचना चौपाई-दोहा शैली में की गई है। इनमें कुछ चौपाइयों के बाद एक दोहा आता है।

4.10 उपयोगी पुस्तकें

हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी

हिंदी साहित्य का इतिहास – संपादक : डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

हिंदी साहित्य की भूमिका – हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

कबीर – हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

उत्तर भारत की संत परंपरा – परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(क) (i) – क

(ii) – ग

(iii) – ग

(iv) – घ

(v) – ख

(ख) देखें – भाग 4.2.1

(ग) देखें – भाग 4.2.2

बोध प्रश्न-2

(क) देखें – भाग 4.5.2

(ख) देखें – भाग 4.4.2

(ग) देखें – भाग 4.5.2

(घ) देखें – भाग 4.5.3

बोध प्रश्न-3

देखें – भाग 4.3

इकाई 5 सूफी काव्यधारा

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सूफी काव्य

5.2.1 सूफी मत और सिद्धांत

5.3 सूफी प्रेमकाव्य-परंपरा

5.3.1 सूफी प्रेमाख्यान का स्वरूप

5.3.2 सूफी प्रेमाख्यानों की मूल प्रेरणा

5.3.3 प्रेम साधना में तपस्या का सौंदर्य

5.4 भाव-व्यंजना और रस

5.4.1 चरित्र-चित्रण

5.4.2 प्रेम-पद्धति की विशेषताएँ

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 उपयोगी पुस्तकें

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आप निर्गुण संत काव्यधारा के संबंध में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में निर्गुण शाखा की सूफी काव्यधारा के संबंध में जानकारी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़कर आप :

- सूफी मत और सिद्धांत पर प्रकाश डाल पाएँगे;
- सूफी प्रेमकाव्य परंपरा के बारे में बता सकेंगे और
- सूफी काव्य की भाव-व्यंजना की जानकारी दे सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

भक्तिकाव्य की निर्गुण धारा में अनेक भक्त कवियों ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए 'प्रेम' को अपना मार्ग बनाया, इन्हें प्रेममार्गी निर्गुण कवि अथवा सूफी कवि कहा गया। इन्होंने अपनी भक्तिपूर्ण अभिव्यक्तियाँ अवधी भाषा में प्रबंधात्मक रचनाएँ लिखकर की। इन्होंने अपनी रचनाओं के लिए आधार कथा लोक में विद्यमान प्रेम कथाओं से लिया तथा रूपकों और प्रतीकों के माध्यम से साधना की प्रणाली को अभिव्यक्त किया। इनके यहाँ प्रेमिका ब्रह्म स्वरूप है तथा प्रेमी साधक है। आगे इस काव्यधारा के महत्वपूर्ण पक्षों की विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

5.2 सूफी काव्य

सूफ़ीमत इस्लाम धर्म की एक उदार शाखा है जिसका उदय इस्लाम के अस्तित्व में आने के बाद हुआ। सूफी संप्रदाय या मत का प्रवेश इस देश में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (बारहवीं शताब्दी) के समय से माना जाता है। सूफियों के चार संप्रदाय इस देश में मिलते हैं – (1) चिश्ती संप्रदाय (2) सोहरावर्दी संप्रदाय (बारहवीं शताब्दी) (3) कादरी संप्रदाय (पंद्रहवीं शताब्दी) (4) नक्सबंदी संप्रदाय (पंद्रहवीं शताब्दी)। इन सूफ़ी संतो के उच्च विचारों, सादा जीवन और व्यापक प्रेम के तत्ववाद ने भारतीय जन जीवन को आकृष्ट किया। भारतीय सूफ़ी संतों ने भारत में प्रचलित गाथाओं, लोक कथाओं का आश्रय लेकर अपने आध्यात्मिक विचारों को जनता तक पहुँचाया।

'सूफ़ी' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई, यह बात विद्वानों में विवाद का विषय रही है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह 'सूफ़ा' से बना है जिसका अर्थ है– पवित्रता। इस धारणा के अनुसार 'सूफ़ी' उन्हें ही कहना चाहिए जो व्यक्ति मन, वचन, कर्म से पवित्र कहे जा सकते हैं। एक दूसरे मत के अनुसार, 'सूफ़ा' शब्द हृदय से निष्कपट या छल रहित व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया गया है। इसलिए सूफ़ी ऐसे व्यक्ति को ही कहना चाहिए जो परमात्मा के प्रति निश्छल प्रेम भाव रखता हो और समस्त प्राणियों के साथ भी निश्छल व्यवहार करता हो। एक तीसरा मत यह है कि 'सूफ़ी' शब्द 'सोफ़िया' से निकला है जिसका अर्थ 'निर्मल ज्ञान' होता है। इस अर्थ के अनुसार निर्मल ज्ञानी व्यक्ति ही सूफ़ी कहलाने के अधिकारी कहे जा सकते हैं। चौथा मत यह है कि 'सूफ़ी' शब्द 'सफ' से निकला है जिसका अर्थ है–'सबसे आगे कि पंक्ति।' इस अर्थ के अनुसार, 'सूफ़ी' केवल उन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों को कहा जा सकता है कि जो 'कयामत' के दिन ईश्वर के प्रिय पात्र होने के कारण सबसे आगे की पंक्ति में खड़े किए जाएँगे। पाचवाँ मत यह है कि यह शब्द 'सूफ़' से बना है जिसका अर्थ 'चबूतरा' होता है। यह शब्द विशेष रूप से अरब देश की किसी मस्जिद के प्रांगण में किसी ऊँचे स्थान पर बने चबूतरे को सूचित करता है जहाँ पर हज़रत मुहम्मद साहब के शिष्य एकत्र होकर परमात्मा का चिंतन किया करते थे और इन शिष्यों के स्वभाव के कारण ही इन्हें 'सूफ़ी' नाम दिया गया। एक छठा महत्वपूर्ण मत यह है कि 'सूफ़ी' शब्द वास्तव में 'सूफ़' से बना है। जिसका अर्थ है– 'ऊन'। यह केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होता था जो मोटे ऊनी वस्त्रों का व्यवहार करते थे और भोग-विलास से दूर रह कर सीधा-सादा जीवन जीते थे। इनका जीवन केवल आध्यात्मिक साधना के प्रति समर्पित होता था। आजकल अधिकतर विद्वान और मुस्लिम आलिम आदि अंतिम मत 'ऊन पहनने वाले सूफ़ी संत' को ही स्वीकार करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में सूफ़ी और सूफ़ीमत का परिचय देते हुए कहा है कि ''आरंभ में सूफ़ी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे। दीनता और नम्रता के साथ बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख-प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे। कुछ दिनों तक तो इस्लाम की साधारण धर्मशिक्षा के पालन में विशेष त्याग और आग्रह के अतिरिक्त इनमें कोई नई बात या विलक्षणता नहीं दिखाई पड़ती थी। पर ज्यों-ज्यों ये साधना के मानसिक पक्ष की ओर अधिक प्रवृत्त होते गए, त्यों-त्यों इस्लाम के बाह्य विधानों से उदासीन होते गए। फिर धीरे-धीरे अंतःकरण की पवित्रता और हृदय के प्रेम को ही मुख्य कहने लगे।'' ज़ाहिर है कि सूफ़ी उन संत फकीरों को कहते थे जो सादा जीवन, उच्च विचार के साथ कठोर साधना का जीवन व्यतीत करते थे और भोग-विलास से दूर थे। ईश्वर के प्रेम में लीन रहना ही जिनके जीवन का उद्देश्य था।

5.2.1 सूफी मत और सिद्धांत

सूफ़ी संतों की प्रेम-साधना को समझने के लिए आवश्यक है कि हम उनके मत और सिद्धांत से भली-भाँति परिचित हों। साथ ही, हमें यह भी जानना जरूरी है कि सूफ़ी प्रेम दर्शन का तात्विक आधार क्या है? सूफ़ी फकीरों ने तत्कालीन समाज के कष्टों को दूर करने के लिए व्यक्तिगत साधना की उच्च भूमि पर पहुँच कर लोकरक्षा के आदर्शों को स्थापित किया। उन्होंने कोई अहंकारी नया पंथ न चलाकर प्रेम-मार्ग के गुणों का बखान किया। विद्वानों का आदर किया और वेद, पुराण तथा कुरान को कल्याण पथ की ओर ले जाने वाला वचन घोषित किया। जायसी वेद मार्ग का खुले रूप से समर्थन करते हैं :

राघव पूज जाखिनी, दुइज देखाएसि साँझ।
वेद पंथ जे नहि चलहि, ते भूलहि बन माँझ?

जायसी ने रामानंद, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु के अहिंसामय वैष्णव विचार प्रवाह के भक्ति रस को मुक्त हृदय से अपना लिया। वे उग्र हिंसामय वाम मार्ग का साथ नहीं देते हैं। क्यों नहीं देते? इस वाम मार्ग के प्रति समाज में आदर का भाव न था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि तंत्र-मंत्र वाले शाक्तों की निंदा तुलसीदास ही – 'जे परिहरि हरिहर चरण, भजहि भूतगन घोर' – नहीं करते हैं, सूफ़ी संत जायसी भी करते हैं। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, ''मंत्र-तंत्र के प्रयोग करने वाले, भूत-प्रेम और यक्षिणी आदि सिद्ध करने वाले तांत्रिकों और शाक्तों के प्रति उस समय समाज में भाव कैसे हो रहे थे, इसका पता राघव चेतन के चरित्र-चित्रण से मिलता है। शाक्त मत विहित मंत्र-तंत्र और प्रयोग आदि वेद विरुद्ध अनाचार के रूप में समझे जाने लगे थे।'' इस कथन से यह वास्तविकता साफ तौर पर उभर कर सामने आ जाती है कि सूफ़ी फकीरों ने वैष्णव मत के अहिंसामय प्रेम को अपनाया। कारण – ''प्रेमप्रधान वैष्णव मत के इस पुनरुत्थान में अहिंसा का भाव यों तो सारी जनता में आदर लाभ कर चुका था पर साधुओं और फकीरों के हृदय में विशेष रूप से बद्धमूल हो गया था। क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या सगुणोपासक, क्या निर्गुणोपासक, सब प्रकार के साधु और फकीर इसका महत्व स्वीकार कर चुके थे।'' निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाले सूफ़ी पशु हिंसा के खिलाफ हैं और इनकी सहृदयता और कोमलता किसी भी सगुणोपासक भक्त से कम नहीं है। भक्ति और उपासना के लिए सूफ़ी ईश्वर को अनंत सौंदर्य, अनंत शक्ति, अनंत गुणों का सागर मानते हैं।

दरअसल, पैगंबरी एकेश्वरवाद और दार्शनिक अद्वैतवाद में भेद काफी गहरा है। पर भारत में आकर इन सूफ़ी साधकों ने शुद्ध 'एकेश्वरवाद' जिसे 'इजादिया' वर्ग के समर्थक मानते थे, ग्रहण नहीं किया। इन सूफ़ियों ने चिंतन संपन्न अद्वैतवाद और विशेषकर अनुभूति प्रधान अद्वैती भक्त संप्रदाय के प्रति आदर दिखाया और इसे ग्रहण किया। इस अद्वैतवाद का मतलब है कि दृश्य जगत की तह में उसका केंद्र एक अखंड नित्य तत्व है और यही एक सत्य सत्ता है। फलतः 'दृश्य जगत के नाना रूपों को उसी अव्यक्त ब्रह्म का आभास मानकर सूफ़ी लोग भावमग्न हुआ करते हैं।' इसी उदार भावमग्न स्थिति ने सूफ़ी प्रेम मार्ग को व्यापक बनाया है। जायसी ने लिखा है :

प्रेम पहार कठिन विधि गढ़ा। सो पै चढ़े जो सिर दै चढ़ा।
पंथ सूरि कर उठा अँकूरू। चोर चढ़ै की चढ़ मंसरू।।

प्रायः सूफ़ी ईश्वर और जगत तथा आत्मा-परमात्मा को एक मानते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, ''मुसलमान लोग एकेश्वरवादी हैं, इसीलिए बहुत लोग मुस्लिम सूफ़ी साधकों को भी एकेश्वरवादी समझ लेते हैं। बहुत लोग हिंदुओं के पुराने ग्रंथों में आए हुए

अद्वैतवाद से एकेश्वरवाद को अभिन्न मानते हैं। परंतु सूफ़ी लोग ठीक एकेश्वरवादी नहीं हैं। उनका विश्वास बहुत कुछ इस देश के विशिष्ट द्वैतवादी दार्शनिकों की भाँति है। विशिष्ट द्वैतवादी दार्शनिकों का व्यावहारिक धर्म भी भक्ति ही है और इन साधकों का व्यावहारिक धर्म भी भक्ति ही है।''

सूफ़ी चिंतक मनुष्य के चार विभाग मानते हैं : (1) नफ्स (विषय भाग, वृत्ति या इंद्रिय), (2) रुह (आत्मा या चित्त), (3) कल्ब (हृदय) और (4) अक्ल (बुद्धि)। साधक (सालिक) का प्रथम लक्ष्य 'नफ्स' के साथ युद्ध होना चाहिए। रूह और कल्ब द्वारा ही साधक साधना करता है। सूफ़ी चिंतक जगत के चार **रूप** मानते हैं– (1) आलमे नासून अर्थात भौतिक जगत (2) आलमे मलकूत अर्थात चित्त जगत (3) आलमे लाहूत अर्थात सत्य जगत या ब्रह्म, (4) आलमे जबरूत अर्थात आनंदमय जगत। सत् ही चरम पारमार्थिक सत्ता है। अतः ब्रह्म को निर्गुण और अज्ञेय ही कहना चाहिए। ईश्वर को स्मरण (जिक्र) और ध्यान (मुराकबत) से ही पाया जा सकता है।

सूफ़ी मत में साधक की चार अवस्थाएँ मानी गई हैं :

(1) शरीयत– अर्थात धर्मग्रंथ के विधि निषेध का सम्यक पालन। यह हमारे यहाँ का कर्मकांड भी कहा जा सकता है।

(2) तरीकत– अर्थात बाहरी क्रिया-कलाप से परे होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान का ध्यान। इसे उपासना कांड कह सकते हैं।

(3) हकीकत– अर्थात भक्ति और उपासना के प्रभाव से सत्य का बोध। इस बोध से ही साधक त्रिकालज्ञ हो जाता है। इसे ज्ञान कांड समझना चाहिए।

(4) मारफत– अर्थात सिद्धावस्था जिसमें कठिन उपवास और मौन आदि की साधना द्वारा अंत में साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

जायसी ने इन अवस्थाओं का उल्लेख 'अखरावट' में किया है :

> कही 'सरीअत' चिस्ती पीरू। उधरित असरफ और जहँगीरू।।
> राह 'हकीकत' परै न चूकी। पैठि 'मारफत' मार बूडूकी।।

ईश्वर की सत्ता का सार प्रेम है। 'इश्क मजाजी' (लौकिक प्रेम) ही 'इश्क हकीकी' (आध्यात्मिक प्रेम) की ओर ले जाने की स्थिति है। इस मार्ग में कई पड़ाव हैं, जिन्हें 'मुलाकात' कहा जाता है। साधक 'फना' से 'बका' की ओर बढ़ता है। सूफ़ी जगत ब्रह्मानंद का वर्णन लौकिक प्रेमानंद के रूप में करते हैं। सूफ़ी बराबर 'खुदा के नूर को हुस्ने बुताँ के परदे' में देखते हैं। ब्रह्म बिंब है और जगत उसका प्रतिबिंब है। यह सिद्धांत प्रतिबिंबवाद कहलाता है जिसकी चर्चा 'पद्मावत' में आती है। हिंदी के सभी सूफ़ी काव्यों में वेदांत के साथ हठयोग की बातों का समावेश सूफ़ियों ने किया है।

सूफ़ी साधक की 'हाल' अवस्था समाधि है। इसके दो पक्ष हैं– त्याग पक्ष में साधक अपने को जगत के अन्य पदार्थों से भिन्न समझने का भाव त्याग देता है। उसका अहं भाव नष्ट हो जाता है और प्रेम का नशा छा जाता है। दूसरा पक्ष प्राप्ति का मार्ग है। साधक घर-बार छोड़कर निकल पड़ता है, वियोग में तड़पता है और प्रेम की तीव्रता से प्रिय को प्राप्त करता है।

5.3 सूफी प्रेमकाव्य-परंपरा

हिंदी में प्रेमाख्यानक काव्यों की एक समृद्ध परंपरा मिलती है। सूफ़ी प्रेमाख्यान काव्यों से पूर्व की परंपरा पर प्राकृत अपभ्रंशों के चरित काव्यों की परंपरा का गहरा असर है। यह असर लोकगाथात्मक प्रेमाख्यानक काव्यों– 'ढोला मारू रा दूहा', 'सदयवत्स-सावलिंगा', 'बीसलदेव रासो' आदि में दिखाई देता है। अपभ्रंश और अवहट्ट के काव्य 'संदेश रासक', 'नेमिनाथ चडमई' आदि भी प्रेमाख्यानक काव्य ही हैं– जिनमें शृंगार और प्रेम की प्रधानता है। हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कुतुबन ['मृगावती', 1501 ई. (संवत् 1558)] का उल्लेख प्रथम प्रेममार्गी सूफी कवि के रूप में किया है। (डा. नगेंद्र द्वारा संपादित हिंदी साहित्य का इतिहास में इसका रचना काल 1503 ई. बताया गया है।) हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ईश्वरदास ('सत्यवती कथा', 1501 ई.) को तथा डा. रामकुमार वर्मा मुल्ला दाउद ('चंदायन', 1379 ई.) को प्रथम सूफी कवि मानते हैं। डा. नगेंद्र द्वारा संपादित हिंदी साहित्य का इतिहास में असाइत ('हंसावली', 1370 ई.) का उल्लेख प्रथम सूफी कवि के रूप में है। इस परंपरा में जायसी की 'पद्मावत' (1540 ई.) से पूर्व की प्रमुख रचनाएँ हैं – असाइत की 'हंसावली' (1370 ई.), मुल्ला दाउद की चंदायन (1379 ई.), दामो कवि की 'लखमसेन-पद्मावती कथा', ईश्वर दास की 'सत्यवती कथा' (1501 ई.), कुतुबन की 'मृगावती' (1503 ई.) तथा गणपति की 'माधवानल-कामकंदला' (1527 ई.)। इसी परंपरा में मंझन की 'मधुमालती' (1545 ई.), नारायण दास की 'छिताई वार्ता' (1590), उस्मान की 'चित्रावली' (1613 ई.) आदि 'पद्मावत' (जायसी, 1540 ई.) के बाद की रचना है।

जायसी ने प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा के संदर्भ में 'पद्मावत' में लिखा है :

विक्रम धैंसा प्रेम के बाराँ। सपनावति कहं गयउ पताराँ।।
सुदेवच्छ मुगुधावति लागी। कंकतपूरि होइगा वैरागी।।
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कह जोगी भयऊ।।
साधा कुँवर मनोहर जोगू। मधुमालति कहं कीन्ह वियोगू।।
प्रेमावती कहँसरसुर साधा। उखा लागि अनिरुद्ध वर बाँधा।।
– 'जायसी ग्रंथावली' (माताप्रसाद गुप्त का पाठालोचन, दोहा 233)

जायसी की सूची से (1) 'स्वप्नावती', (2) 'मुग्धावती', (3) 'मृगावती', (4) 'मधुमालती', (5) 'प्रेमावती', (6) 'उषा-अनिरुद्ध' आदि प्रेम काव्यों का पता चलता है। इनमें से 'मृगावती' तथा 'मधुमालती' को छोड़कर शेष कृतियों का पता नहीं चल सका है। आत्मकथाकार बनारसीदास ने 'अर्द्धकथानक' (सन् 1603 ई.) में 'मृगावती' तथा 'मधुमालती' का उल्लेख यह कहकर किया है कि वे घर में बैठकर इन कृतियों में रम रहे हैं। जायसी ने मंझन कवि की कृति 'मधुमालती' का उल्लेख इसलिए नहीं किया है कि यह कृति 'पद्मावत' (सन् 1540 ई.) के बाद सन् 1545 ई. में लिखी गई है। अतः जिस 'मधुमालती' का जायसी ने संकेत किया है, वह किसी अन्य कवि की रचना है। 'विक्रमादित्य', 'उषा-अनिरुद्ध', 'सदथवत्स' आदि लोक प्रचलित प्रेम कहानियों के नाम हैं जो उस समय जनता में प्रसिद्ध रहे होंगे।

हिंदी के उपलब्ध प्रेम काव्यों में कुतुबन की 'मृगावती' या 'मिरगावती' एक प्रसिद्ध रचना है। इस प्रेमकाव्य में चंद्रगिरि के राजकुमार और कंचनपुर की राजकुमारी मृगावती की प्रेम कथा है। यह रचना सन् 1503 ई. की मानी जाती है। इस रचना के बाद मलिक मुहम्मद जायसी की प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' का नाम आता है जिसमें राजा रत्नसेन और सिंहलगढ़ की राजकुमारी पद्मावती की प्रेमकथा है। भारतीय ज़मीन पर लिखी गई यह सबसे महत्वपूर्ण त्रासदी है। 'पद्मावत' के बाद मंझन कृत 'मधुमालती' का नाम है जिसमें कनेसर के राजा

सूरजभान के पुत्र मनोहर तथा महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती के प्रेम की कथा वर्णित है। इसके उपरांत उस्मान कृत 'चित्रावली' काव्य आता है जिसमें नेपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की प्रेमकथा मिलती है। तदुपरांत जान कवि के 29 प्रेमाख्यानक काव्य मिलते हैं जिनमें 'रत्नावती', 'लैलामजनूँ', 'नल-दमयंती', 'रतनमंजरी', पहुप-वरिषा', 'कमलावती', 'छबिसागर', 'कामलता', 'कनकावती' आदि प्रमुख हैं। इन सभी रचनाओं पर 'पद्मावत' का पर्याप्त प्रभाव है। जान कवि के समकालीन शेखनवी कृत 'ज्ञानदीप' नामक प्रेमकाव्य मिलता है जिसमें रानी देवजानी तथा राजा ज्ञानदीप के प्रेम संबंध की कथा है। कुछ समय बाद कासिम शाह ने 'हंस जवाहिर' नामक प्रेमकाव्य की रचना की। तदंतर नूर मुहम्मद कृत 'इंद्रावती' और 'अनुराग बाँसुरी' जैसे प्रेमकाव्य लिखे गए। इसी परंपरा में निसार कवि ने 'युसुफ जुलेखा' नामक प्रेमकाव्य लिखा। मूलकथा शामी परंपरा पर आधारित है। ख्वाजाअहमद ने 'नूरजहाँ', शेख रहीम ने 'प्रेमरस', नसीर ने 'प्रेम दर्पण', अलीमुरीद ने 'कुंवरावत', सदानंद या हुसैन अली ने 'पुहुपावती', अली सलोनी ने 'प्रेम चिनगारी' जैसे प्रेमकाव्यों को लिखकर इस परंपरा का विकास किया। मसनवी पद्धति में लिखे गए ये सभी काव्य प्रबंध काव्य हैं और 'इश्क मजाजी' से 'इश्क हकीकी' की यात्रा तय करते हैं। इन कथा रूपकों (एलीगरी) का हिंदी सूफ़ी परंपरा में महत्व अनुभूति की सघनता और मार्मिकता के कारण भी रहा है।

बोध प्रश्न-1

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक पंक्ति में दीजिए।

(i) सूफी चिंतन में 'आलमे लाहूत' किस चीज के लिए प्रयुक्त हुआ है?

.....

(ii) कुतुबन की 'मृगावती' किस वर्ष की रचना मानी जाती है?

.....

(iii) किस प्रेमाख्यान काव्य में नेपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान के प्रेम का चित्रण किया गया है?

.....

(iv) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किस कवि को सूफी काव्य का प्रथम कवि माना है?

.....

(v) 'अनुराग बाँसूरी' के लेखक कौन हैं?

.....

(ख) सूफी काव्यधारा में 'सूफी' शब्द का क्या अभिप्राय है। स्पष्ट कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

5.3.1 सूफी प्रेमाख्यान का स्वरूप

प्रेमाख्यान का आख्यान शब्द कथा और आख्यायिका से कहीं न कहीं जुड़ता दिखाई देता है। किसी युग में आख्यान शब्द 'पुराणमाख्यानम्' अर्थात 'पुराण ही आख्यान है' के लिए प्रयुक्त होता था तथा इसके भीतर पाई जाने वाली कथाओं को 'उपाख्यान' कहा जाता था। यही अर्थ सिद्ध करने के लिए 'महाभारत' को भी 'भारताख्यान' कहा गया है। आख्यान कल्पित, ऐतिहासिक, इतिवृत्तात्मक तथा वर्णनात्मक होते थे। सूफ़ियों ने भारत में प्रसिद्ध लोक कथाओं और लोक गाथाओं को अपनाया और उन पर अपने सिद्धांतों का रंग चढ़ा दिया। सूफ़ी प्रेमाख्यानों में प्रेम चार प्रकार से वर्णित मिलता है :

(1) चित्र दर्शन– मानव अथवा पक्षी से नायिका का चित्र देखना और आसक्त हो जाना,

(2) स्वप्न दर्शन– स्वप्न में सुंदर राजकुमार को देखना और प्रेम राग शुरू कर देना जैसे 'स्वप्नावती' काव्य में,

(3) गुण श्रवण–मानव या पक्षी से गुण और रूप का वर्णन सुनकर आसक्त हो जाना, जैसे 'पद्मावत' में हीरामन तोते के द्वारा पद्मावती के रूप-गुण का कथन तथा

(4) प्रत्यक्ष वर्णन– यह परंपरा बहुप्रचलित रही है।

इन प्रेमाख्यानक सूफ़ी काव्यों के नायक प्रेम की पीड़ा को लेकर जोगी हो जाते हैं। राज-पाट, धन-दौलत छोड़कर प्रेमिका के लिए दीवाने हो जाते हैं। सात समुद्रों को पार करने का कष्ट उठाते हैं। कभी-कभार प्रेमिका को पाने के लिए घोर संग्राम करते हैं। ये प्रेमी न केवल विकट यात्राओं को निकल पड़ते हैं वरन् अनेक प्रकार के कष्टों-यातनाओं को सहते हैं। कारण :

प्रेम पहार कठिन बिधि गढ़ा। सौ पै चढ़े जो सिर सौं चढ़ा।।

प्रेम ही जीवन का सार-सर्वस्व है। प्रेम के कारण ही मानव दिव्य हो गया है :

मानुष पेम भएउ वैकुंठी। नाहिं तो व्याह छार एक मूठी।।

प्रेमिका को पाने के लिए मंत्र-तंत्र, रसायन, छल-कपट आदि को अपनाया जाता है। भारतीय प्रेम कथाओं में प्रेमी प्रेमिका का विवाह करा दिया जाता है जबकि फारसी प्रेम-कथाओं में ऐसा नहीं होता। लैला का विवाह किसी अन्य पुरुष से हो जाता है और मजनूँ आह भर-भर कर दम तोड़ता है। जब मजनूँ के मरने की खबर लैला को मिलती है तब लैला में विरह की तीव्रता और दर्द की तड़प जगती है। ज्यादातर भारतीय प्रेमकथाएँ सुखात्मक हैं। 'पद्मावत' जैसी दुखांत रचना का सृजन भारतीय भूमि पर कम ही हुआ है। जायसी अपने समाज और उसमें प्रचलित सत्ता-संघर्ष को देख रहे थे। उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने इस समूचे परिदृश्य को नई पूर्वग्रहहीन आँखों से देखा और साथ ही इस सारे अभिमान की व्यर्थता को देखा जो उनके समाज को मथ रही थी। अंत में, अलाउद्दीन के बारे में जायसी का कथन है :

छार उठाइ लीन्ह एक मूठी। दीन्ह उड़ाइ, पिरिथिमी झूठी।।

विजयदेव नारायण साही ने 'पद्मावत' के संदर्भ में लिखा है, '' 'पद्मावत' की कथा केवल अलाउद्दीन, रतनसेन और पद्मिनी की व्यक्तिगत ट्रेजेडी नहीं है। जिन शर्तों पर जायसी का समाज उलट-पुलट रहा है उनके चलते समूची पृथ्वी के झूठी पड़ जाने की ट्रेजेडी है।'' जायसी ने सूफ़ी प्रेमाख्यानकों में ऐसी नारियों का प्रवेश कराया है जो भारतीय संस्कृति की प्रतीक हैं साथ ही लौकिक कथा में अलौकिक प्रेम की झाँकी दिखाने में भी इन नारियों ने भारी मदद की है।

ध्यान देने की बात यह है कि भारतीय सूफ़ी कवियों ने प्रेमाख्यान काव्यों की रचना पहले पहल फारसी भाषा के माध्यम से आरंभ की थी। उदाहरणार्थ हिंदी के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो (1255-1325 ई.) ने ईरान के फारसी कवि निजामी के 'पंचगंज' नामक 'खम्स' अर्थात पाँच मसनवियों के संग्रह के जवाब में अपना भी एक 'खम्स' तैयार किया जिसका संबंध 'शीरीं-खुशरू' और 'मजनूँ-लैला' नामक प्रेम कहानियों से था। उन्होंने 'दुवलरानी खिज्रखां' जैसी मसनवी ऐतिहासिक प्रेम-कथा का आधार लेकर लिखी है। खुसरो के बाद उनकी मसनवी रचना पद्धति का अनुकरण कई अन्य सूफ़ी कवियों ने किया, किंतु अनुकरण के दो मार्ग बन गए – (1) पहला मार्ग हिंदी में उन कवियों का है जो अवधी भाषा में दोहा और चौपाई छंद को लेकर प्रेम प्रधान मसनवी लिखते हैं; (2) दूसरा मार्ग, हिंदवी से प्रभावित दकनी उर्दू (दक्खिनी हिंदी) को अपनाकर आगे बढ़ता है। दक्खिनी हिंदी के इस सूफ़ी साहित्य को हिंदी साहित्य के इतिहास की एक धारा के अंतर्गत ही समझना चाहिए। दक्खिनी हिंदी में निजामी ने 'कदम राव ओ पदम' (सन् 1460 ई.), शाह हुसैनी ने 'वशीर तुल अनवर' (सन् 1623 ई.), मुल्ला बजही ने 'सबरस' (सन् 1636 ई.), मुकीमी ने 'चादर वदन व महियार' (सन् 1640 ई.) नुसरती ने 'गुलशने इश्क' (सन् 1657 ई.), गुलाम अली ने 'पद्मावत' (सन् 1666 ई.) तथा हाशिमी ने 'युसुफ ओ जुलेखा' (सन् 1680 ई.) जैसे प्रेमाख्यानकों की रचना की। लेकिन दक्खिनी हिंदी के इन सूफ़ी कवियों पर अभारतीय कथा-स्रोत का प्रभाव ज्यादा रहा है। मसनवी पद्धति का पूरा ढाँचा फारसी ढंग से खड़ा किया गया। उदाहरणार्थ कवि वजही ने 'सबरस' का कथानक और रचनात्मक साँचा फारसी के कवि फल्मही के 'दस्तूरे इश्क' से लिया है। उत्तर भारत के सूफी कवियों ने भारतीय लोककथा का आश्रय लिया तथा अवधी भाषा में रचना की।

5.3.2 सूफी प्रेमाख्यानों की मूल प्रेरणा

सूफ़ी साधक परमात्मा रूपी प्रियतम से मिलन के लिए तप करते हैं। प्रियतम से वियोग को असहनीय मान कर वे विरहाकुल रहते हैं। यह विरह जड़ और चेतन दोनों को बेचैन करने वाला है। इस प्रकार सूफ़ी काव्यों की मूल प्रेरणा ईश्वर से एकाकार स्थापित करने की है। 'इश्क मजाजी' (सांसारिक प्रेम) की प्रगाढ़ता में ही 'इश्क हकीकी' (ईश्वरीय प्रेम) की झलक निहित है। वह ईश्वर परम प्रेममय, परम सौंदर्यमय और परम ज्योतिमय रूप में सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है। मजनूँ का लैला की ओर खिंचना, फरहाद का शींरी की ओर खिंचना, रतनसेन का पद्मावती की ओर खिंचना – आत्मा का परमात्मा के सौंदर्य की ओर बढ़ना और साक्षात्कार करना है। ईश्वरीय ज्योति पर एक विचित्र-पर्दा – 'हिज़ाब' पड़ा रहता है जिसका दूर होना आवश्यक है। कलुष रहित हृदय के प्रेम के माध्यम से यह पर्दा हटाकर दिव्य सौंदर्य को पाया जा सकता है। साधक के प्रेम से परमात्मा भी पसीजता है– इसलिए दोनों ओर से प्रेम की प्रगाढ़ता उमड़ती है। प्रेम यात्रा की विघ्न बाधाओं को झेलकर अंततः रतनसेन रूपी आत्मा पद्मावती रूपी परमात्मा को प्राप्त कर ही लेता है।

5.3.3 प्रेम-साधना में तपस्या का सौंदर्य

सूफी प्रेम साधना तथा भारतीय प्रेम साधना में समान तत्व यह है कि दोनों में ही तप के सौंदर्य को महत्व दिया जाता है। सूफ़ी कवियों ने अपनी सभी कृतियों में इस बात का सदा ध्यान रखा है कि तप के कष्ट की महिमा ही प्रेम की महिमा है। इस प्रेम का आधार है – सौंदर्य। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है, ''उसका प्रभाव फिर क्रमशः एक प्रेमी हृदय पर इतना गहरा होता जाता है कि वह अपने जीवन की सारी अन्य बातों के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करते हुए केवल अभीष्ट व्यक्ति को अपना बनाकर संतोष की सांस लेने के सिवाय और कोई बात पसंद

नहीं करता तथा तब तक वह अत्यंत व्याकुल और बेचैन रहता है। इसलिए उसे अपने घर पर रहते किसी सफलता की आशा नहीं रह जाती। वह किसी परामर्शदाता की सहायता से उसे छोड़ बाहर निकल पड़ता है। वह या तो जोगी बन जाता है, कठिन मार्गों से होकर भूलता भटकता फिरता है, बीहड़ वनों, समुद्री लहरों, मरुस्थलों की यात्रा करता है या गली-कूचों में खाक छानता-फिरता है अथवा दानवों या परियों के क्षेत्रों में भी पहुँचकर अपने प्राणों को संकट में डालता रहता है।'' (सं. धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य, पृ. 260) यह नायक अनेक प्रकार की परीक्षाएँ ही नहीं देता अनेक युद्धों से भी जूझता रहता है। कभी-कभार तो उसे बंदी जीवन व्यतीत करता पड़ता है, दासता स्वीकार करनी पड़ती है, जोगी बनकर गोरखनाथ की जय बोलनी पड़ती है, तंत्र-मंत्र रसायन के चक्कर में घूमना पड़ता है। अर्थात सालिक या साधक को हर परीक्षा में खुद को तपा हुआ शुद्ध सोना सिद्ध करना पड़ता है। 'पद्मावत' काव्य में पार्वती ने रतनसेन के प्रेम-परीक्षा के बाद कहा कि यह खरा सोना है और प्रेम की आग में जल रहा है :

निहचय यह प्रेमानल दहा। कसे कसौटी कंचन लहा।।

5.4 भाव-व्यंजना और रस

सूफी काव्य का प्रधान विषय प्रेम तत्व की व्यंजना है। प्रेम तत्व में सूफ़ी कवि संयोग को कम वियोग शृंगार या विरह पक्ष को विशेष महत्व देते हैं। यही कारण है कि इन कवियों का पूरा ध्यान प्रेमी-प्रेमिकाओं के विरह वर्णन, इस अवधि में झेले जाने वाले कष्ट तथा प्रिय (ईश्वर) को पाने के लिए सभी प्रकार के प्रयत्नों में लगा है। वस्तुतः यहाँ विरह दशा की वह मनोभूमिका है जो चित्त की समाधि या प्रिय के प्रति नितांत एकनिष्ठता लाती है। सूफ़ियों ने विरह वर्णन के अंतर्गत ऋतु वर्णन, बारहमासा वर्णन को विशेष महत्व दिया है और विरह का इतना अतिरंजित-ऊहात्मक वर्णन किया गया है कि विरह के ताप से सूरज लाल पड़ जाता है, गेहूँ का पेट फट जाता है, कौआ काला पड़ जाता है और आँख से आँसू की जगह खून बहता है, खून-मांस गिरने का यह वर्णन अनुपात में इतना बढ़ जाता है कि प्रायः वीभत्सता भी आ जाती है, पर जायसी का विरह-वर्णन हिंदी साहित्य की निधि है। इसमें मनुष्य और अन्य जीवों के बीच सह-अनुभूति को शामिल किया गया है।

सूफ़ी काव्यों में प्रधान रस शृंगार रहा है। नायक, सुंदरियों की ओर प्रत्यक्ष दर्शन, गुण श्रवण, स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन के माध्यम से बढ़ते हैं। प्रायः नायक राजा, राजकुमार या धनी सेठ होते हैं जिनकी रुचि भोग-विलास की ओर रहती है। नायक के साथ नायिका में भी प्रेम-आग की तड़प और बेचैनी दिखाई देती है जैसे 'पद्मावत' में रतनसेन के साथ पद्मावती तथा मंझन की 'मधुमालती' में मनोहर के साथ मधुमालती के तड़पने का वर्णन मिलता है। सखा, सखी, दूत, पक्षी, वन, उपवन आदि उद्दीपन विभाव का कार्य करते हैं। शृंगार के साथ अन्य रसों का वर्णन कम है। कभी-कभार नायक को विरोधियों का भी सामना करना पड़ता है जैसे मुल्ला दाऊद की रचना 'चंदायन' का नायक लोरिक अपनी प्रेयसी को भगाकर लाते समय कई शत्रुओं से लड़ता है और उन्हें परास्त करता है। 'पद्मावत' का नायक रतनसेन वीर रस की उद्भावना का श्रेष्ठ उदाहरण है। इसी काव्य में गोरा-बादल का युद्ध वीर रस का अविस्मरणीय स्थल है।

इन सभी काव्यों में करुणा, वीभत्स और रौद्र रस के छींटे पड़ते हैं पर जायसी के 'पद्मावत' का अंत शांत रस का अनुपम रूप सामने लाता है। एक प्रकार से यहाँ 'पिरिथिवी' झूठी होने का एक जीवन दर्शन है।

5.4.1 चरित्र-चित्रण

सूफ़ी कवियों ने अपनी प्रेम-कहानी में जितना ध्यान उसके घटना चक्रों, रहस्यमय वर्णनों, विस्तार-विवरणों, प्रसंग और परिवेश चित्रण पर केंद्रित किया है उतना चरित्र-चित्रण पर नहीं। मूलतः ये सभी पात्र सूफ़ी प्रेम सिद्धांत को सामने लाने के माध्यम मात्र रहे हैं। यही कारण है कि इन पात्रों में मानव जीवन के वैविध्य की झलक मिलने पर भी मानव जीवन के पूर्ण चित्र नहीं मिलते हैं। प्रायः पात्र लोककथाओं के भीतर से उपजे हैं– जिन पर लोक चेतना का गाढ़ा रंग चढ़ा हुआ है। प्रेमी पात्र जोगी, फ़कीर, हठयोगी, रूपलोभी बनकर वन, पर्वत, समुद्र छानते मिलते हैं। दरअसल इन रचनाओं का प्रधान उद्देश्य ईश्वरीय प्रेम का गहरा परिचय देना है। परमात्मा से मिलन ही जीवन का एक मात्र ध्येय है– लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति ही इन नायकों का अरमान रहता है। प्रेम में मतवाले होकर नायक राज पाट त्याग देते हैं। हर प्रकार का कष्ट झेल लेते हैं और एकनिष्ठ प्रेम की साधना करते हैं। ये नायक पराक्रमी होते हैं और प्रेम पंथ में बाधा आने पर दानवों को मारते हैं, हाथियों को पछाड़ते हैं और युद्धों में विजयी होते हैं। पर वह वीरता भी प्रेम विकास की ही एक मंजिल है जिसका अलग से कोई महत्व नहीं है। ज्यादातर नायक आदर्श प्रेमी हैं। मंझन की 'मधुमालती' के नायक मनोहर तथा शेख रहीम के 'माया प्रेम रस' के नायक प्रेमसेन, जायसी के 'पद्मावत' के नायक रतनसेन को हम आदर्श प्रेमियों का सूफ़ी मॉडल मान सकते हैं। सूफ़ियों ने प्रतिनायकों को कम उभारा है– अन्य पात्रों को राघव चेतन आदि को भी कथा के भीतर ही पहचान दी है– बाहर उनकी पहचान गायब है।

5.4.2 प्रेम-पद्धति की विशेषताएँ

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कवियों में प्रेम-पद्धति की चार कोटियाँ स्वीकार की है– (1) प्रथम प्रकार का प्रेम वह है जो आदि काव्य ('रामायण') में मिलता है। इस प्रेम का विकास विवाह हो जाने के पीछे और पूर्ण उत्कर्ष जीवन की विकट परिस्थितियों में दृष्टिगत होता है। यह प्रेम निर्मल और शुद्ध है जिसमें कामुकता नहीं है। (2) दूसरे प्रकार का प्रेम विवाह पूर्व का होता है और बाद में विवाह होता है। यह प्रेम नायक-नायिका में घूमते-फिरते, वन उपवन में कहीं भी हो जाता है। इस प्रेम में मानव जीवन की आदिम स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं जैसे कालीदास के नाटक–'अभिज्ञान शाकुंतल' में दुष्यंत शकुंतला का प्रेम। (3) तीसरे प्रकार के प्रेम का उदय प्रायः राजाओं के अंतःपुर, उद्यान आदि के भीतर भोग-विलास या रंग-रहस्य के रूप में दिखाया जाता है, जिसमें सपत्नियों के द्वेष, विदूषकों आदि के हास-परिहास और राजाओं की स्त्रैणता आदि का दृश्य होता है। जैसे– राजशेखर की रचना 'कर्पूर मंजरी', श्री हर्ष की रचना 'रत्नावली' आदि का प्रेम। इसमें नायक को कहीं वन, पर्वत आदि के बीच नहीं जाना पड़ता, वह घर के भीतर ही लुकता-छिपता, चौकड़ी मारता दिखाया गया है। (4) चौथे प्रकार का वह प्रेम है जो गुणश्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन आदि से बैठे बिठाए उत्पन्न होता है और नायक और नायिका को संयोग के लिए प्रयत्नवान करता है। 'उषा-अनिरुद्ध' का प्रेम इसी कोटि में आता है।

इस प्रकार चार तरह का प्रेम-वर्णन भारत के प्राचीन-नवीन साहित्य में मिलता है पर विरह-व्याकुलता, तड़प की असह्य वेदना स्त्रियों के मत्थे अधिक मढ़ी गई। सूफ़ियों का प्रेम चौथे ढंग के अंतर्गत आता है। 'नायक का यह आदर्श लैला-मजनू, शीरी-फरहाद आदि उन अरबी-फारसी कहानियों के आदर्श से मिलता-जुलता है। फारस के प्रेम में नायक के प्रेम का वेग अधिक दिखाई देता है और भारत के प्रेम में नायिका के प्रेम का वेग। जायसी ने आगे चलकर नायक और नायिका दोनों के प्रेम की तीव्रता को समान करके दोनों आदर्शों का एक

में मेल कर दिया है। फारसी मसनवियों का प्रेम एकांतिक और आदर्शात्मक होता है– पर भारतीय प्रेम का स्वरूप जीवन के बीच से फूटकर लोक सौंदर्य की ओर बढ़ता है। जायसी के 'पद्मावत्' का प्रेम भी लोकपक्ष शून्य नहीं है। हालाँकि आरंभ में रतनसेन रूप-लोभी दिखाया गया है जो हीरामन तोता से पद्मावती के रूप-सौंदर्य का वर्णन सुनकर तत्काल बेहोश हो जाता है पर जोगी बनकर घर-बार त्यागकर निकल पड़ने के बाद इस प्रेम में गहराई तथा साधना का तेज फूटता है। यहाँ रूप-लोभ की नहीं, शुद्ध प्रेम की व्यंजना मिलती है।'

बोध प्रश्न-2

(क) निम्नलिखित कथनों में जो सही है उनके आगे (✓) का तथा जो गलत है उनके आगे (×) का निशान लगाएँ।

(i) सूफी कवियों ने अपनी कविता में उलटबाँसी का प्रयोग प्रमुखता से किया है।

(ii) जायसी हिंदी सूफी काव्य परंपरा के प्रथम कवि हैं।

(iii) सूफी कवियों ने भारतीय लोककथाओं को आधार बनाते हुए प्रबंधात्मक काव्य लिखे हैं।

(iv) 'पद्मावत' एक दुखांत रचना है।

(v) सूफी चिंतन परंपरा में 'आलमे लाहूत' का अर्थ साधक है।

(ख) निम्नलिखित सूफी प्रेमाख्यानों के लेखकों का नाम बताइए।

प्रेमाख्यानक काव्य	**लेखक**
(i) मृगावती	.....
(ii) सत्यवती कथा	.....
(iii) चित्रावली	.....
(iv) चंदायन	.....
(v) हंसावली	.....

(ग) सूफी प्रेमाख्यानों की मूल प्रेरणा क्या है? (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(घ) सूफी मत में साधक की विभिन्न अवस्थाएँ कौन-कौन सी है, इसे स्पष्ट कीजिए। (उत्तर आठ पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(ङ) हिंदी सूफी प्रेमकाव्य की परंपरा पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(च) सूफी प्रेमाख्यान के स्वरूप पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.5 सारांश

- सूफी काव्यधारा के कवियों ने भारतीय लोक कथाओं को आधार बनाकर प्रबंधात्मक प्रेमाख्यान काव्य लिखें हैं। इन कवियों की भाषा अवधी है।
- मुल्ला दाउद, कुतुबन, मंझन, जायसी आदि हिंदी के प्रमुख सूफी कवि हैं।

- इनके काव्य में प्रेमिका ब्रह्म का तथा प्रेमी साधक का प्रतीक है।
- इन्होंने लौकिक प्रेम को (इश्क मजाजी) ईश्वरीय प्रेम (इश्क हकीकी) का माध्यम बनाया। इनकी प्रेम साधना में विरह को ज्यादा महत्व दिया गया है।

5.6 शब्दावली

सूफी कवियों ने अनेक पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किए हैं, जिनमें से प्रमुख शब्द और उनके अर्थ यहाँ दिये जा रहे हैं।

हाल – यह सूफ़ी मत में समाधि की अवस्था का नाम है। इस अवस्था में साधक अपने को जगत के अन्य पदार्थों से भिन्न समझने का भाव त्याग देता है तथा उसका अहं भाव नष्ट हो जाता है और उसे प्रेम का नशा छा जाता है।

इश्क मजाजी – यह साधक की लौकिक प्रेम अवस्था है।

इश्क हकीकी – यह साधक की अलौकिक प्रेम अवस्था है।

नफ्स – विषय भोग वृत्ति।

नासून – मानव लोक।

मलकूत – अदृश्य लोक।

अबरूत – उच्चतम लोक।

लाहूत – परलोक या ब्रह्म लोक।

मसनवी – इसमें कथा सर्गों या अध्यायों में विभक्त न होकर कथा को खंडों, प्रसंगों या घटनाओं के अनुसार रूप दिया जाता है। मसनवी के लिए साहित्यिक नियम तो इतना ही है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छंद में ही हो, पर परंपरानुसार उसमें कथारंभ के पहले ईश्वर स्तुति, पैगंबर की वंदना और उस समय के राजा – 'शाहे-वक्त' की प्रशंसा होनी चाहिए। ये बातें 'पद्मावत', 'इंद्रावती', 'मृगवती' आदि सभी सूफ़ी काव्यों में पाई जाती हैं।

हठयोग – इस साधना में इला, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों की चर्चा रहती है। योगी ब्रह्म की अनुभूति के लिए कुंडलिनी को जगाकर ब्रह्मद्वार तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है।

प्रतिबिंबवाद – ब्रह्म बिंब है और ईश्वर उसका प्रतिबिंब है। यह सिद्धांत प्रतिबिंबवाद कहलाता है।

5.7 उपयोगी पुस्तकें

हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी

हिंदी साहित्य का इतिहास – संपादक डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

हिंदी साहित्य की भूमिका – हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

सूफी-काव्य-संग्रह – आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

जायसी ग्रंथावली – संपादक रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

परंपरा का मूल्यांकन – रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(क) (i) सूफी चिंतन में 'आलमे लाहूत' सत्य जगत अथवा ब्रह्म के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(ii) कुतुबन की मृगावती 1503 ई. की रचना है।

(iii) 'चित्रावली' में नेपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान के प्रेम का चित्रण किया गया है।

(iv) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ईश्वरदास को सूफी काव्य का प्रथम कवि माना है।

(v) 'अनुराग बाँसुरी' के लेखक नूर मुहम्मद हैं।

(ख) देखें – भाग 5.2

बोध-प्रश्न 2

(क) (i) – ×

(ii) – ×

(iii) – ✓

(iv) – ✓

(v) – ×

(ख) (i) – कुतुबन

(ii) – ईश्वरदास

(iii) – उस्मान

(iv) – मुल्ला दाउद

(v) – असाइत

(ग) देखें – भाग 5.3.2

(घ) देखें – भाग 5.2.1

(ङ) देखें – भाग 5.3

(च) देखें – भाग 5.3.1

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 6 कृष्णभक्ति काव्यधारा

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कृष्णभक्ति काव्य और भक्ति आंदोलन

6.3 हिंदी कृष्णभक्ति काव्य से संबंधित प्रमुख संप्रदाय

6.4 हिंदी साहित्य में कृष्णभक्ति काव्य परंपरा

6.5 कृष्णभक्ति काव्य की वस्तुगत विशेषताएँ
- 6.5.1 भक्ति का स्वरूप
- 6.5.2 वर्ण्य विषय

6.6 कृष्णभक्ति काव्य की शिल्पगत विशेषताएँ
- 6.6.1 काव्यरूप
- 6.6.2 काव्यभाषा
- 6.6.3 प्रतीक और बिंब
- 6.6.4 संगीत, छंद और लय
- 6.6.5 अलंकार विधान

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 उपयोगी पुस्तकें

6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

पिछली दो इकाइयों में आप निर्गुण भक्ति की संत काव्यधारा तथा सूफी काव्यधारा की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में सगुण भक्ति की कृष्णभक्ति काव्यधारा की जानकारी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़कर आप :

- भक्ति आंदोलन में कृष्णभक्त कवियों की भूमिका की जानकारी दे सकेंगे;
- कृष्णभक्ति काव्य की वस्तुगत विशेषताएँ बता सकेंगे तथा
- कृष्णभक्ति काव्य की शिल्पगत विशेषताओं का विवेचन कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

सगुण भक्तिधारा भक्तिकाव्य का अभिन्न अंग है। सगुण भक्ति में यह माना जाता है कि ईश्वर भक्त पर कृपा करने के लिए अवतार लेते हैं। ईश्वर के अवतार की जो मान्यता रही है उसमें विष्णु के दस अवतारों का होना बताया जाता है। इन दस अवतारों में रामावतार तथा

कृष्णावतार की विशेष प्रतिष्ठा रही है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम माना गया है जबकि कृष्ण लीलाओं से परिपूर्ण हैं। मध्यकालीन सगुण भक्तिकाव्य विष्णु के इन्हीं दो अवतारों को आधार बनाकर विकसित हुई है। सगुण भक्तिकाव्य की ये धाराएँ हैं– (1) कृष्णभक्ति काव्यधारा और (2) रामभक्ति काव्यधारा। हिंदी की कृष्णभक्ति काव्यधारा में दास्य भाव, वात्सल्य भाव, सख्य भाव और माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति हुई है, जबकि रामभक्ति काव्यधारा में दास्य भाव और सख्य भाव की प्रधानता है। कृष्णभक्ति काव्यधारा की कविता की भाषा ब्रजभाषा है तथा यह प्रायः मुक्तकों में लिखी गई है। रामभक्ति काव्यधारा की मुख्य भाषा अवधी है।

कृष्णभक्ति काव्य के विकास में अनेक कृष्णभक्त संप्रदायों की भूमिका रही है। कृष्णभक्ति काव्य परंपरा में विद्यापति प्रथम कवि हैं। अष्टछाप के कवियों ने इस काव्यधारा को उत्कर्ष पर पहुँचाया। अष्टछाप से बाहर के कवियों की भी भक्ति की इस धारा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन सभी आयामों के बारे में इस इकाई में जानकारी दी जा रही है। इसके साथ ही कृष्णभक्ति काव्यधारा की वस्तुगत तथा शिल्पगत विशेषताओं पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला जा रहा है।

6.2 कृष्णभक्ति काव्य और भक्ति आंदोलन

भक्ति आंदोलन के दौर में कृष्णभक्ति काव्य का विकास अचानक ही नहीं हो गया। हिंदी के भक्ति आंदोलन के पूर्व कृष्णभक्ति विकास और चिंतन परंपरा के अनेक मोड़ से गुजरा है। प्रमुख बात यह है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य में कृष्ण का व्यक्तित्व अत्यंत विलक्षण है। कृष्ण आंगिरस का प्राचीनतम उल्लेख 'ऋग्वेद' में पाया जाता है। किंतु कृष्ण यहाँ एक ऋषि के रूप में हैं। 'ऋग्वेद' में कृष्णासुर का उल्लेख है जिसे इंद्र ने पराजित किया था। आश्चर्य की बात यह है कि 'महाभारत' के वीर राजनीतिज्ञ कृष्ण और 'श्रीमद्भागवत' के प्रेममय कृष्ण के व्यक्तित्वों की प्राचीन संदर्भों में कोई समानता नहीं मिलती है।

'छांदोग्य' उपनिषद के आंगिरस के शिष्य कृष्ण देवकी के पुत्र अवश्य कहे गए हैं फिर भी विद्वानों ने यह तर्क उपस्थित किया है कि वैदिक कृष्ण और महाभारतकालीन कृष्ण दो अलग-अलग व्यक्ति हैं। कई विद्वानों का यह मत है कि वैदिक ऋषि कृष्ण का 'महाभारत' के राजनीतिक कृष्ण से कोई संबंध नहीं है। किंतु विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो कहता है कि कृष्ण का व्यक्तित्व वेदों के बाद निरंतर बदलता रहा और अनेक उपासनाओं में उनके व्यक्तित्व को विविध रूपों में स्वीकृति मिलती रही। 'महाभारत' के आरंभ में वासुदेव कृष्ण की उपासना के व्यापक संदर्भ मिलते हैं किंतु इन संदर्भों को उपनिषद काल के कृष्ण के साथ भी आसानी से जोड़ा जा सकता है। जातकों में 'महा उमगा' जातक में कृष्ण वासुदेव की एक संक्षिप्त कथा भी मिलती है। पर सच्चाई यह है कि 'हरिवंश', 'विष्णु', 'भागवत' आदि पुराणों में ही कृष्ण की कथा को विशेष महत्व मिला है। यह कहना अधिक सार्थक होगा कि 'भागवत' की कृष्णकथा ही सबसे अधिक विस्तृत और व्यवस्थित कथा है और इसी कथा ने कृष्णभक्ति काव्य को सर्वाधिक प्रेरित किया है। यह मानने में भी आपत्ति नहीं हो सकती है कि कृष्ण कथा मौखिक रूप में भी प्रचलित रही और जब पुराणों का धार्मिक रूप में उपयोग होने लगा तो इस कथा का नए ढंग से विस्तार हुआ। कृष्ण कथा के कई रूप और पक्ष हैं जिनकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ की जा रही है। कृष्ण कथाओं के भीतर से कृष्ण के तीन रूप उभरते हैं :

(1) योगी धर्मात्मा का रूप– यह रूप 'गीता' के कृष्ण में चरम परिणति पाता है।

(2) ललित मधुर गोपाल का रूप– संस्कृत साहित्य में इसी रूप का उत्कर्ष है। यह मुख्य रूप से 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' और 'श्रीमद्भागवत' में मिलता है।

(3) वीर राजनयिक रूप– यह 'महाभारत' और पुराणों के अनेक प्रसंगों में दृष्टिगत होता है।

कृष्ण के इन रूपों को देखने पर ज्ञात होता है कि वे वासुदेव कृष्ण के रूप में लोकप्रिय हुए और धीरे-धीरे उनके साथ ललित मधुर गोपाल कृष्ण की कथाएँ जुड़ती गईं। कालांतर में उन्होंने भारतीय धर्म, संस्कृति और कलाओं पर व्यापक छाप छोड़ी। 'भागवत' में गोपाल कृष्ण की चर्चा तो है पर राधा का नामोल्लेख तक नहीं है। दूसरी ओर 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में राधा और कृष्ण के प्रेम का विस्तार से वर्णन है। यह इस बात का संकेत है कि लोक साहित्य (मौखिक और लिखित) तथा गीतिकाव्य परंपरा में कृष्ण की कथाएँ प्रचलित रही होंगी। इन कथाओं की पहली साहित्यिक अभिव्यक्ति बारहवीं शताब्दी के संस्कृत कवि जयदेव के 'गीत गोविंद' में होती है। मूलतः 'गीत गोविंद' लौकिक शृंगार की कृति है लेकिन वर्णन की तन्मयता उसे भक्ति की ओर ले जाती है। जयदेव को भी लोकगीतों की परंपरा मिली होगी, किंतु लोकगीतों की परंपरा की देशभाषा में पहली अभिव्यक्ति विद्यापति (14वीं-15वीं शताब्दी) के पदों में हुई है।

विद्यापति (1350-1460 ई.) की कविता में माधुर्य भाव वाला शृंगार है। वास्तविकता यह है कि कवि ने अपने आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिए राधा-कृष्ण के प्रेम प्रसंगों को काव्य का विषय बनाया है। विद्यापति शृंगार के कवि हैं; इन्हें सीधे-सीधे कृष्ण भक्तों की परंपरा में न समझना चाहिए। हालाँकि यह ठीक है कि चैतन्य महाप्रभु (1486-1533 ई.) जैसे भक्तों को विद्यापति के गीतों में भक्ति की चरम तन्मयता मिली और ऐसा ही वातावरण भक्तिकाल की भावावेशपूर्ण स्थिति ने पैदा किया। यह पूरा का पूरा परिवेश भक्ति रस में निमग्न है। इसी परिवेश की चमक भक्तिकाल के अधिकांश कृष्णभक्ति काव्य में है।

कृष्णकाव्य को भक्ति आंदोलन ने एक व्यापक पृष्ठभूमि प्रदान करते हुए नवीन भावभूमि प्रदान की। कालांतर में कृष्णकाव्य में मधुरोपासना या प्रेमाभक्ति के कई रूपों का विकास हुआ। बालकृष्ण की उपासना कृष्ण के अवतारी रूपों से जुड़ती गई। कृष्ण प्रमुख भारतीय देवता हैं और शूरसेन प्रदेश की पशुपालक जातियों से उनका प्राचीन संबंध है। यह अवश्य मानना पड़ता है कि गोपाल कृष्ण तथा ब्रजनंदन की लीलाओं का प्रारंभ पुराणों से हुआ और इन पुराणों पर भक्ति आंदोलन की गहरी छाप है। पुराणों में एक ओर तो कृष्ण का आध्यात्मिक रूप व्यंजित हुआ दूसरी ओर लौकिक लीलावतारी रस माधुरी से भरा रूप-सौंदर्य वाला रूप। इन रूपों को लेकर कहा गया कि समस्त वेद कृष्ण की अराधना करते हैं। पुराणों में कृष्ण को योगेश्वर, सच्चिदानंद, अविनाशी, जातीय-विजातीय भेदशून्य कहा गया है। भक्तों के आराध्य होने के साथ वे भक्त वत्सल हैं और उनमें लोक रंजक और लोक रंजन का रूप भी पर्याप्त आकर्षक है।

भक्ति आंदोलन पर विचार करने वाले विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि ईसा की दूसरी शताब्दी से ही कृष्णोपासना के चिह्न मिलने लगते हैं। गुप्त सम्राटों के युग में कृष्ण ने विष्णु नारायण वासुदेव के रूप में अखिल भारतीय रूप पा लिया था। पाँचवीं से लेकर नवीं शताब्दी तक भक्ति आंदोलन का प्रमुख क्षेत्र दक्षिण भारत रहा और तमिलनाडु में इस आंदोलन को विशेष शक्ति प्राप्त हुई। आलवार भक्तों ने पूरे देश को व्यापक रूप से प्रभावित किया। कश्मीर में लटदेह, बंगाल में चंडीदास, गुजरात में नरसी मेहता आदि विभिन्न प्रदेशों के संत भक्त कवि इसी प्रभाव से जनता के मुरझाए मनों को सींचते रहे। दक्षिण भारत से आने वाली

इस भक्तिधारा का वेग उत्तरी भारत में आकर पुनः नवीन शक्ति में बदल गया और इस भक्ति आंदोलन ने पूरे देश को भावात्मक एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य किया। इस भावात्मक एकता की आधारभूमि थी भक्ति। उसे ही परम प्रेमरूप और अमृत रूप कहा गया था, जिसे प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है। ईश्वर के परम अनुरक्ति का नाम ही भक्ति है; अतः ईश्वर को प्राप्त करने के साधनों में कर्म, ज्ञान और योग के साथ भक्ति मार्ग की भी गणना की गई है। भक्ति मार्ग का प्रमुख आधार भागवत धर्म है जिसका उदय ईसा के लगभग 1400 वर्ष पूर्व हुआ था। यह सच है कि ब्राह्मण काल में कर्मकांड की प्रमुखता के कारण भक्ति का प्रवाह कुंठित हुआ। उपनिषद युग में निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति का रूझान मिलता है परंतु महाभारत काल में सगुण प्रतीकों की सृष्टि के साथ सगुण भक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ। पाणिनि के सूत्रों से पता चलता है कि पाणिनि के पूर्व वासुदेव-भक्ति प्रचलित थी जिसका समय ई.पू. 14वीं शताब्दी माना जा सकता है। यह सच है कि भक्ति मार्ग में वासुदेव भक्ति का प्राधान्य रहा और बुद्धोत्तर काल में भक्ति आंदोलन अपने स्वरूप को विस्तृत करता गया। मानव देहधारी, ब्रह्म की उपासना जनता के लिए रुचिकर प्रतीत हुई। अतः प्रत्यक्ष नाम रूपात्मक उपासना ही भक्ति मार्ग कहलाई।

कालांतर में रामानुजाचार्य (10वीं-11वीं शताब्दी ई.) ने ब्राह्मणों और अब्राह्मणों के लिए भक्ति के वेदानुकूल भक्ति और तांत्रिक भक्ति नामक दो भेद किए। रामानुजाचार्य की परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए रामानंद ने उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का प्रसार किया। उन्होंने भक्ति को स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण-अब्राह्मण सभी के लिए सुलभ बना दिया। इसी बीच वैष्णव शास्त्रकारों ने शांति, प्रीति, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य के भावों का विवेचन किया और इन पाँच भावों को पाँच रसों में स्थापित कर दिया। इन सभी का एक व्यापक नाम पड़ा – भक्ति रस। भक्ति रस के भीतर प्रेम लक्षणा भक्ति को सर्वोपरि स्थान मिला क्योंकि इस भक्ति से भक्त को भगवान का सबसे अधिक अनुग्रह प्राप्त होता है।

6.3 हिंदी कृष्णभक्ति काव्य से संबंधित प्रमुख संप्रदाय

हिंदी कृष्णभक्ति काव्य के प्रमुख संप्रदायों का प्रचार और प्रसार ब्रजमंडल क्षेत्र में व्यापकता से पाया जाता है। इस संदर्भ में संप्रदाय से अर्थ है – विशिष्ट दार्शनिक विचारधारा का प्रतिपादन करने वाला सिद्धांत, मत या समूह। संप्रदाय का अर्थ यहाँ वह नहीं है जो वस्तुतः आज प्रचलित है और जो संकुचित सांप्रदायिकता का सूचक है। भक्तिकाल में संप्रदाय का अर्थ है – किसी विशिष्ट चिंतन परंपरा को विकसित और पोषित करने वाली एक विशेष पद्धति। इस दृष्टि से कृष्णभक्ति काव्य को समझने के लिए उसके प्रमुख संप्रदायों की चर्चा नीचे की गई है :

(i) **वल्लभ संप्रदाय** – यह संप्रदाय वल्लभाचार्य द्वारा पंद्रहवीं-सोलहवीं शती में स्थापित किया गया। इसकी भक्ति का नाम पुष्टि मार्ग है। इसे कृष्ण के प्रेम पर आधारित माना जाता है। इस मत का दार्शनिक सिद्धांत शुद्धाद्वैत कहलाता है। वल्लभाचार्य के चार शिष्य और विट्ठलनाथ के चार शिष्य को सम्मिलित करके अष्टछाप की स्थापना की गई। अष्टछाप के इन आठों कवियों ने इस संप्रदाय की विचारधारा के प्रसार में विशेष सहायता की । इन कवियों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं – कुंभनदास, सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास, गोविंददास, छीतस्वामी, नंददास और चतुर्भुजदास। इस संप्रदाय के इष्ट देव श्रीनाथ जी हैं। ये आठों भक्त कवि सखा भाव से कृष्ण की प्रेमाभक्ति में अनुरक्त रहे हैं। विशेष बात यह है कि ये आठों कवि विभिन्न जातियों और वर्गों से आए थे और संगीत तथा कलाओं पर इनका असाधारण अधिकार था।

(ii) माधव संप्रदाय – इस मत के अनुयायी मध्वाचार्य से प्रभावित थे। यह संप्रदाय भक्ति के आदर्श को निरूपित करता है। नाम कीर्तन इस संप्रदाय में विशेष रूप से प्रचलित हुआ। इनकी प्रमुख पुस्तक 'भक्ति रत्नावली' है।

(iii) विष्णु संप्रदाय – विष्णु स्वामी ने इस संप्रदाय की स्थापना की और बिल्व मंगल संन्यासी ने 'कृष्ण कर्णामृत' नामक कविता में राधा-कृष्ण का यश गायन कर इस मत का विशेष प्रचार किया। किंतु बाद में यह संप्रदाय वल्लभ संप्रदाय में मिल गया क्योंकि प्रभु वल्लभाचार्य ने विष्णु स्वामी के सिद्धांतों को लेकर बाद में 'पुष्टि मार्ग' की स्थापना की।

(iv) निंबार्क संप्रदाय – निंबार्काचार्य के इस संप्रदाय का विकास हरिव्यास मुनि और श्रीभट्ट की प्रसिद्ध रचनाओं से हुआ। इन्होंने श्रीकृष्ण के संकीर्तन को विशेष स्थान दिया। इस संप्रदाय की यह मान्यता है कि दैन्य भाव से कृष्ण की कृपा प्राप्त होती है और प्रेममूलक भक्ति से जीव का कल्याण होता है। भक्तों पर अनुग्रह के लिए ही कृष्ण अवतार धारण करते हैं।

(v) चैतन्य संप्रदाय – चैतन्य संप्रदाय की स्थापना सोलहवीं शताब्दी में हुई। चैतन्य ने भागवत पुराण की भक्ति का आदर्श स्वीकार किया। जयदेव, चंडीदास और विद्यापति के कृष्ण विषयक पदों को गा कर चैतन्य ने कृष्णभक्ति का विशेष प्रचार किया। उन्होंने कृष्णभक्ति में राधा को विशेष स्थान दिया। विशिष्ट बात यह है कि इस संप्रदाय में जाति-पाँति का बंधन बिल्कुल नहीं है।

(vi) राधावल्लभ संप्रदाय– इस संप्रदाय की स्थापना पंद्रहवीं शताब्दी में हितहरिवंश ने वृंदावन में की। माधव और निंबार्क संप्रदाय से इस संप्रदाय को विशेष आधार मिला और इसी आधार से हितहरिवंश ने 'राधा सुधानिधि' की रचना की। इस संप्रदाय की विशेषता यह है कि इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण नहीं, राधा प्रमुख है। राधा यहाँ परम प्रकृति है और कृष्ण उस पर आश्रित पुरुष हैं। कृष्ण राधा के साथ एकाकार हो कर गोप-गोपियों के साथ लीलारत होते हैं और शृंगार के सौंदर्य मंडित रूप का विस्तार करते हैं। राधा-वल्लभ श्रीकृष्ण का ही उपास्य नाम है।

(vii) हरिदासी संप्रदाय– इस संप्रदाय की स्थापना स्वामी हरिदास ने की और उन्हीं के साथ इसका अंत भी मानना चाहिए। इस संप्रदाय को सखी संप्रदाय भी कहा जाता है क्योंकि स्वामी हरिदास ने नित्य बिहारी कृष्ण की निकुंज लीलाओं का गान किया है।

(viii) दत्तात्रेय संप्रदाय– इस मत के अनुयायी दत्तात्रेय को अपने पंथ का प्रवर्तक मानते हैं। दत्तात्रेय का रूप तीन सिरों से युक्त है। इनके साथ एक गाय और चार कुत्ते हैं। दत्तात्रेय स्वयं कृष्ण के अवतार माने जाते हैं। इस संप्रदाय में स्वयं कृष्ण ही आराध्य हैं और भगवत्गीता ही परम अराधना की पुस्तक है। इस संप्रदाय का विशेष प्रचार महाराष्ट्र में हुआ।

बोध प्रश्न-1

(क) निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति उनके साथ दिए गए विकल्पों में से कीजिए।

(i) वल्लभ संप्रदाय का दार्शनिक मत ..... कहलाता है। (अद्वैत / शुद्धाद्वैत)

(ii) चैतन्य महाप्रभु ..... के पदों को गाया करते थे। (विद्यापति / सूरदास)

(iii) ..... सम्राटों के युग में कृष्ण ने विष्णु नारायण वासुदेव के रूप में अखिल भारतीय रूप पा लिया था। (मौर्य / गुप्त)

(iv) राधा-वल्लभ संप्रदाय में ..... प्रमुख है। (राधा / कृष्ण)

(v) पुष्टि मार्ग की स्थापना ..... ने की। (निंबार्काचार्य / वल्लभाचार्य)

(ख) वल्लभ संप्रदाय तथा राधा-वल्लभ संप्रदाय का परिचय दीजिए।
(उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 हिंदी साहित्य में कृष्णभक्ति काव्य परंपरा

हिंदी कृष्णभक्ति काव्य की परंपरा को बारहवीं शताब्दी के कवि जयदेव ने 'गीत गोविंद' लिख कर विशेष रूप से प्रेरित किया। संस्कृत में राधा-कृष्ण संबंधी यह प्रथम रचना है। विद्वानों का अनुमान है कि कवि को इस रचना की प्रेरणा लोकगीतों और लोककथाओं में मिली होगी।

विद्यापति (1350-1460 ई.) : कृष्णभक्ति की लोक परंपरा को चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में विद्यापति ने कृष्ण-राधा संबंधी अपने पदों की भावधारा में ढाल दिया। हिंदी में कृष्ण काव्य संबंधी गीति काव्य परंपरा के प्रमुख प्रवर्तक कवि विद्यापति ही हैं। कृष्ण और राधा के मधुर रूप को इन्होंने लोक परंपरा में रस-सिक्त कर दिया।

सूरदास (1478-1583 ई.) : विद्यापति के बाद हिंदी कृष्ण काव्य के प्रथम बड़े कवि सूरदास हुए। सूरदास की प्रतिभा का विकास 'पुष्टि मार्ग' के प्रवर्तक वल्लभाचार्य के संस्पर्श से हुआ। सूर ने गोपाल कृष्ण के गोकुल, वृंदावन और मथुरा के जीवन से संबंधित संपूर्ण आख्यान को 'सूरसागर' नामक अपनी कृति में प्रस्तुत किया है। कथा की सामान्य रूपरेखा श्रीमद्भागवत पुराण से ली, किंतु प्रसंगों और विवरणों को उन्होंने अपनी प्रतिभा से मौलिकता प्रदान करते हुए अद्वितीय बना दिया। भक्ति भावना के माध्यम से कथा को इस प्रकार संगठित किया कि 'सूरसागर' भक्ति सागर ही बन गया। भक्तिभाव को भक्ति रस बनाने में सूरदास का महत्व सर्वोपरि है। सूरदास के जीवन और उनकी कृतियों की जानकारी के लिए नाभादास कृत 'भक्तमाल' और गोकुलदास कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' का आधार लिया जाता है।

सूरदास की भेंट 1510 ई. के आसपास वल्लभाचार्य से हुई। तब से इन्होंने दास्य और विनय के पद लिखना बंद करके सख्य, वात्सल्य और माधुर्य-भाव के पद लिखना शुरू किया। डॉ. दीनदयालु गुप्त ने अपनी पुस्तक 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' में सूर रचित 25 ग्रंथों की सूची दी है जिनमें 'सूरसागर', 'सूर सारावली', 'सूर साहित्य लहरी', 'सूर पचीसी', 'सूर रामायण' आदि प्रमुख हैं। वस्तुतः 'सूरसागर' ही उनकी प्रमुख कृति है। 'साहित्य लहरी' उनके पदों का संग्रह है। अर्थ गोपन शैली में राधाकृष्ण की लीलाओं के वर्णन के लिए इस ग्रंथ का विशेष महत्व है। 'सूरसागर' की कथा का आधार श्रीमद्भागवत पुराण है, लेकिन इसे उसका अनुवाद नहीं समझना चाहिए क्योंकि इसमें सघन अनुभूति और आत्माभिव्यक्ति को श्रेष्ठ सर्जनात्मक विस्तार मिलता है। वात्सल्य और शृंगार का उन्होंने इसमें जैसा उद्घाटन किया वैसा अनूठा वर्णन हिंदी साहित्य के किसी भी कवि में नहीं मिलता। ब्रजभाषा की साहित्यिक गरिमा को स्थापित करने वाली रचनाओं में 'सूरसागर' अग्रगण्य है। साथ ही राग रागिनियों के स्वर ताल से बँधी हुई पद शैली का अनूठा उदाहरण भी है। सूर की भक्ति माखन चोर कृष्ण पर केंद्रित है, यथा :

इहिं उर माखन चोर गड़े।
अब कैसैं निकसत सुनि ऊधौ, तिरछे व्है जु अड़े।।

'सूरसागर' में सूरदास ने निर्गुण का खंडन करते हुए सगुण की स्थापना की है :

अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूंगैं मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जाने जो पावैं।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहि तातैं सूर सगुण पद गावै।

कुंभनदास (1468-1583 ई.) : कुंभनदास ब्रज में गोवर्धन पर्वत से दूर एक गाँव में रहते थे। गृहस्थ होते हुए भी ये अनासक्त भाव से कृष्णभक्ति में लीन रहते थे। ये कीर्तन गायन में बड़े प्रसिद्ध थे और व्यक्तित्ववान भी थे। किंवदंती है कि कुंभनदास एक बार अकबर के निमंत्रण पर फतेहपुर सीकरी गए थे। वहाँ बादशाह के आग्रह पर उन्होंने पद सुनाया था :

भक्तन को कहा सीकरी सों काम
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरिनाम।
जाको देखे दुःख लागै ताकौ करन परी परनाम।
कुंभनदास लाल गिरिधर बिन यह सब झूठो धाम।।

कुंभनदास की स्वतंत्र रचनाओं का उल्लेख नहीं मिलता, किंतु उनके कुछ पद 'राग कल्पद्रुम', 'राग रत्नाकर', 'वसंत धमार कीर्तन' आदि में संकलित हैं। इनके पदों में साहित्यिकता से ज्यादा संगीत और लय का सौंदर्य है।

परमानंददास (1493-1553 ई.) : अष्टछाप के प्रमुख कवि परमानंददास का जन्म कन्नौज के निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वल्लभाचार्य से दीक्षा लेकर ये बाल लीला के पदों की रचना करते रहे। इनकी रचनाएँ 'परमानंद सागर' के नाम से प्रकाशित हैं। बाल लीला के सुंदर पद इन्होंने लिखे हैं किंतु उनमें सूरदास जैसी मार्मिकता नहीं है।

कृष्णदास (1495-1575 ई.) : ये कृष्णदास अधिकारी के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये दलित समुदाय से थे और गुजरात के राजनगर राज्य में जन्मे थे। प्रबंध पटुता के कारण ये ब्रज

में आकर श्रीनाथ जी के मंदिर का प्रबंध देखने लगे। संगीत के मर्मज्ञ और गायक थे। बाल लीला तथा राधा-कृष्ण प्रेम प्रसंग में इनका मन रमता था। इनकी मातृभाषा गुजराती थी लेकिन ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था।

नंददास (1533-1586 ई.) : अष्टछाप के कवियों में नंददास काव्य सौंदर्य और दार्शनिकता की दृष्टि से सूरदास के बाद सबसे महत्वपूर्ण कवि हैं। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनका जन्म सोरों में हुआ था तथा काशी में इन्होंने शास्त्र का अध्ययन किया था। पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने के बाद इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की जिनमें 'भँवरगीत', 'रास पंचाध्यायी', 'रस मंजरी', 'रूप मंजरी', 'स्याम सगाई' आदि प्रसिद्ध हैं। 'भँवरगीत' इनकी अत्यंत प्रसिद्ध रचना है। अपनी दार्शनिकता और काव्यगत परिपक्वता के लिए भी यह कृति बेजोड़ मानी जाती है।

गोविंदस्वामी (1505-1585 ई.) : गोविंदस्वामी का जन्म भरतपुर राज्य के एक गाँव में हुआ। ये गृहस्थ थे। वैराग्य होने पर ब्रज मंडल में आ गए। संगीत शास्त्र का इन्हें अच्छा ज्ञान था और ये भक्तों को पद गायन सिखाते थे। 1535 ई. में गोस्वामी विट्ठलनाथ से पुष्टि मार्ग की दीक्षा लेकर अष्टछाप में सम्मिलित हो गए। प्रसिद्ध है कि अकबर के दरबार के गायक तानसेन इनके पास आकर पद गायन की शिक्षा लेते थे। इनके पद 'गोविंदस्वामी के पद' नाम से संकलित हैं। ब्रजभाषा का लालित्य इनमें अद्भुत ढंग से विद्यमान है।

छीतस्वामी (1500-1585 ई.) : ये मथुरा के चतुर्वेदी ब्राह्मण थे और बीरबल के पुरोहित थे। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर अष्टछाप में सम्मिलित हो इन्होंने संगीत में अपने आपको समर्पित कर दिया। कीर्तन के लिए 200 पदों की रचना की। इनकी भक्ति की तन्मयता की बहुत किंवदंतियाँ प्रचलित हैं।

चतुर्भुजदास (1540-1585 ई.) : प्रसिद्ध है कि ये कुंभनदास के सबसे छोटे पुत्र थे। ये खेती-बाड़ी करते और भजन-कीर्तन में समय बिताते थे। पिता ने इन्हें गायन विद्या और पुष्टिमार्ग की दीक्षा दिलाई थी। इनके पदों का संग्रह 'चतुर्भुज कीर्तन संग्रह' के नाम से प्रकाशित है। इनमें कृष्ण जन्म से लेकर गोपी विरह तक की लीला का गायन है।

श्री भट्ट : कृष्ण की ललित लीलाओं का वर्णन करने वाले मधुर भाव के कवि हैं। इनका संबंध निंबार्क संप्रदाय से था। इनकी रचना 'युगल शतक' बहुत प्रसिद्ध हुई।

मीरांबाई (1504-1558 ई.) : इनका जन्म राजस्थान में राव रत्न सिंह के घर में हुआ था। इनका विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के बड़े पुत्र भोजराज से 1516 ई. में हुआ। दुर्भाग्यवश 7 वर्ष के बाद मीरां विधवा हो गईं और जीवन भर संघर्ष झेलती रही। लोक-लाज और कुल की मर्यादा छोड़ कर इन्होंने अपने को कृष्णभक्ति में समर्पित कर दिया। मीरां की भक्ति में तन्मयता और एकनिष्ठता है तथा गीतिकाव्य का मधुर रस। मीरां के काव्य का मूल स्वर है– 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई'। इनकी रचनाओं का प्रामाणिक संकलन मीरांबाई की पदावली के नाम से प्रकाशित है। इनकी तुलना आलवार भक्तिन आंडाल से की जा सकती है। इनकी भाषा राजस्थानी गुजराती मिश्रित ब्रजभाषा है।

रसखान : रसखान के जन्म, शिक्षा-दीक्षा, निधन आदि का प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। किंतु रसखान रचित 'प्रेम वाटिका' के आधार पर कहा जाता है कि ये हुमायूँ के समय में मौजूद थे :

> देखि गदर हित साहबी दिल्ली नगर मसान।
> छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छोड़ि रसखान।।

बादशाह वंश की ठसक छोड़कर ये कृष्ण प्रेम के दीवाने हो गए। इनका असली नाम इब्राहिम खाँ था। ये दिल्ली छोड़कर गोवर्धन धाम चले गए थे। प्रसिद्ध है कि इन्होंने विट्ठलनाथ जी से वल्लभ-संप्रदाय की दीक्षा ली थी। इनकी चार रचनाएँ प्रसिद्ध हैं– 'सुजान रसखान', 'प्रेम वाटिका', 'दान लीला' और 'अष्टयाम'। इनमें भक्त और कवि का अद्‌भुत समन्वय है और इनकी रचनाओं में ब्रजभाषा कविता का रस-सौंदर्य छलक पड़ता है। राधा और कृष्ण की प्रेम भक्ति के ऐसे मधुर गायक हिंदी में कम हुए हैं।

ब्रजभाषा कृष्णभक्ति काव्य की परंपरा अत्यंत समृद्ध है जिसके अंतर्गत अनेक कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। जैसे– हरिव्यास देव, परशुराम देव, हित हरिवंश, ध्रुवदास, नेही नागरीदास, स्वामी हरिदास, जगन्नाथ गोस्वामी, बीठल विपुल, बिहारिनदास, भक्तिकवि नागरीदास, राम राय, चंद्रदास, नरोत्तमदास, भगवान दास, माधवदास माधुरी, ब्रजवासी लाल आदि। कृष्णभक्ति काव्य परंपरा में कविता के भाव पक्ष और कला पक्ष का अद्‌भुत विकास हुआ। भक्ति की मधुरता ने इस कविता को लोक हृदय में स्थापित कर दिया और संगीत की राग-रागिनियों पर इन शास्त्रीय संगीत के गायकों ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है। संगीत और काव्य दोनों का इन कवियों के हाथों अद्‌भुत विकास हुआ।

कृष्णभक्ति काव्य की जो परंपरा भक्तिकाल में शुरू हुई थी वह धीरे-धीरे रीतिकालीन श्रृंगारी काव्य में परिणत होती गई। रीतिकाल में आकर कृष्ण और राधा भक्ति के प्रतीक न रह कर श्रृंगार के प्रतीक हो गए। रीतिकाल के बाद आधुनिक काल में भी कृष्णकाव्य का सृजन हुआ और युगीन परिस्थितियों ने दृष्टिकोण में बदलाव पैदा किया।

6.5 कृष्णभक्ति काव्य की वस्तुगत विशेषताएँ

6.5.1 भक्ति का स्वरूप

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म का प्रभाव घटने के बाद शंकराचार्य के अद्वैतवाद और मायावाद का प्रभाव धार्मिक क्षेत्र में बढ़ने लगा था। शंकराचार्य के प्रभाव से भक्ति आंदोलन को धक्का लगा था। किंतु इसी समय भक्ति आंदोलन के मूलाधार को प्रकट करने वाले ग्रंथों का उभार हुआ। ये ग्रंथ हैं– वेद, ब्रह्मसूत्र, भगवत्‌गीता और भागवत। ये चार सूत्र ग्रंथ भक्ति आंदोलन के मूलाधार कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त भक्ति शास्त्र पर लिखे अन्य ग्रंथों ने भी जैसे 'नारद भक्तिसूत्र', 'शांडिल्य-भक्तिसूत्र', 'उज्जवल नीलमणि' और 'हरि भक्ति रसामृत सिंधु' जैसे विशिष्ट ग्रंथों में भी भक्ति के रसमय स्वरूप का निर्धारण किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उपासना का नया मार्ग चल पड़ा। कृष्णभक्ति के सभी आचार्यों ने शंकर के मायावाद का खंडन किया और जीवन और जगत की सत्यता तथा ईश्वर-भक्ति की पुनः स्थापना की। कृष्णभक्ति के आचार्यों को मायावाद के खंडन की प्रेरणा रामानुजाचार्य से मिली थी और इसी प्रेरणा के प्रभाव से भक्ति आंदोलन पूरे उत्तरी भारत में बड़े वेग से प्रवाहित हुआ। इस परंपरा की सामान्य दृष्टि इस प्रकार है :

(1) ब्रह्म के सगुण रूप को विशेष मान्यता दी गई और विष्णु के अनेक अवतारों में राम और कृष्ण के अवतार को विशेष महत्व दिया गया।

(2) जगत और जीव की सत्यता स्थापित करते हुए मायावाद का तो खंडन किया ही गया, ब्रह्म के अवतारवाद को स्थापित करते हुए इस लोक की विशिष्ट महिमा का बखान भी किया गया।

(3) इस वैष्णव धर्म की विशेष बात यह रही कि जाति और कुल का भेदभाव यहाँ मान्य नहीं था। संकीर्ण भावों से उठकर इनकी दृष्टि ईश्वर या आलंबन पर केंद्रित होती गई।

शांडिल्य के भक्ति सूत्रों में भक्ति की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि ईश्वर के प्रति अनुरक्ति ही भक्ति है। यह अमृत स्वरूप है और इसे पाकर मनुष्य सिद्ध और तृप्त हो जाता है। न वह शोक करता है, न द्वेष करता है और न किसी संसारी वस्तु पर आसक्त होता है। वल्लभाचार्य ने कहा है कि भक्ति में भगवान के महात्म्य का ज्ञान सुदृढ़ और सतत प्रेम का है, मुक्ति का इससे सरल उपाय नहीं है। इस प्रकार भक्ति कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ है। अष्टछाप के कवियों ने भक्ति का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है उसमें प्रायः वल्लभाचार्य के मत का अनुसरण मिलता है। इन भक्त कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का वात्सल्य, सख्य, दास्य और कांता भाव से वर्णन किया है। किंतु इस वर्णन में कृष्ण के ईश्वरत्व भाव की महत्ता को कहीं भी डिगने नहीं दिया गया है। बार-बार याद दिलाया जाता है कि यह लीला भगवान की है; मनुष्य की नहीं। इन सभी कवियों ने माधुर्य भक्ति भावना को हृदय से अपनाया। रामभक्त कवियों में वैधी या मर्यादा भक्ति की प्रधानता है तो कृष्णभक्त कवियों में रागानुगा या प्रेमाभक्ति की प्रधानता रही है। इस प्रेमाभक्ति के अंतर्गत नवधा भक्ति को इन्होंने समेट लिया है। नवधा भक्ति का अर्थ है – अर्चना, वंदना, पूजा, स्मरण आदि द्वारा ईश्वर की उपासना। हिंदी के कृष्णभक्त कवियों ने भक्ति की व्याख्या तो नहीं की लेकिन उसकी महिमा का वर्णन बार-बार किया है। वल्लभाचार्य ने भक्ति मार्ग के समर्थन में कहा है कि संसार से निवृत्ति का सरल मार्ग ज्ञान और योग की बजाए भक्ति का ही है। सूरदास ने स्पष्ट कहा है :

रे मन समुझि सोच विचार,
भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ कहत निगम पुकारि।

गोपी-उद्धव-संवाद में भी सूरदास निर्गुण भक्ति से सगुण भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। परमानंददास ने भी कहा है कि ज्ञान और योगमार्ग से भक्ति मार्ग श्रेष्ठ है :

माई हौं अपने गोपालहि गाऊँ,
सुंदर स्याम कमल दल लोचन देखि देखि सुख पाऊँ।

सभी कृष्णभक्त कवियों ने सगुण ब्रह्म की उपासना पद्धति की ही श्रेष्ठता घोषित की है। सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप में सरल और सीधा मार्ग है और यह सीधा मार्ग परमानंद की ओर ले जाता है। सूरदास और नंददास ने 'भ्रमर गीतों' में गोपी-उद्धव संवाद के द्वारा सगुण और निर्गुण तथा भक्ति और ज्ञान के विवाद को प्रस्तुत किया है। सूर की गोपियाँ निर्गुण की अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए कहती हैं :

निरगुन कौन देस को बासी?
मधुकर कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी।।
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी।
कैसे बरन, भेस हैं कैसों किहि रस मैं अभिलासी।
पावैगो पुनि कियौ आपनौ, जो रे! करैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो बाबरौ सो सूर सबै मति नासी।।

कृष्णकाव्य की प्रेम लक्षणा भक्ति को सुधासार भक्ति भी कहा जाता है। विशेष बात यह है कि इन कवियों ने भक्ति में संगीत का भी समावेश किया है।

6.5.2 वर्ण्य विषय

कृष्णभक्ति काव्य का मुख्य विषय लीला बिहारी कृष्ण की लीलाओं का गायन रहा है। लीला

गायन का आरंभ कृष्ण के जन्म से होता है और उसका विस्तार शैशव काल की चेष्टाओं, नटखट क्रीड़ाओं से लेकर राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं, रास क्रीड़ाओं और फिर कृष्ण के मथुरा गमन के बाद गोपी विरह और यशोदा के विरह तक है। मूलतः इन लीलाओं को श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध से लिया गया है। रासलीला और भ्रमरगीत के प्रसंग के लिए श्रीमद्भागवत का उल्लेख विद्वान इसी कारण से करते हैं। डॉ. राम कुमार वर्मा ने लिखा है, ''कृष्णकाव्य के प्रायः सभी कवियों ने कृष्ण के रास और प्रकृति की शोभा का चित्रण किया है। अनेक कवियों द्वारा भ्रमरगीत भी लिखा गया है। अपवादस्वरूप मीरां ने कृष्ण की भावना अपने एकांत प्रियतम के रूप में कर केवल अपनी भक्ति की रूपरेखा निर्धारित की। मीरां के दृष्टिकोण में कृष्णलीला का उतना महत्व नहीं जितना कृष्ण के प्रेममय स्वरूप का। इन चरित्रों के साथ भक्ति का उन्मेष भी है जो सख्य भावना की विशेषता है। इस भक्ति को सबसे अधिक प्रोत्साहन पुष्टिमार्ग से मिला। पुष्टिमार्ग में कृष्ण के अनुग्रह का प्रधान अंग है। श्री कृष्ण का अनुग्रह भक्ति से ही प्राप्त होगा।'' इस प्रकार प्रायः कृष्णभक्त कवियों ने पुष्टि मार्ग में ही भक्ति की सार्थक भावना को पाया है। कभी-कभार भक्ति मार्ग का नाम लेकर इस काव्य में नायक-नायिका भेद की सृष्टि भी हुई है। कृष्ण और राधा के रूप-सौंदर्य को लेकर नख-शिख की परंपरा भी चली है और श्रीकृष्ण के रास को आधार बनाकर ऋतु वर्णन में मनमाने शृंगार की सृष्टि भी हुई है। इस स्थिति के कारण विद्वानों का यह विचार ठीक है कि कृष्णभक्ति काव्य के भीतर ही रीतिशास्त्र के बीज मौजूद थे। रीतिशास्त्र ने आगे चलकर नख-शिख वर्णन, नायक-नायिका भेद, ऋतुवर्णन का विस्तार किया और अलंकार योजना के द्वारा चमत्कार का तत्व पैदा किया। अतः कह सकते हैं कि कृष्णभक्ति काव्य का वर्ण्य विषय भक्ति के साथ-साथ कला सृष्टि की ओर उन्मुख होता गया है।

बोध प्रश्न-2

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए।

(i) हिंदी में कृष्णकाव्य संबंधी गीति काव्य परंपरा के प्रमुख प्रवर्तक कवि कौन हैं?

.....

.....

(ii) अष्टछाप के कवियों में काव्य-सौंदर्य और दार्शनिकता की दृष्टि से सूरदास के बाद सबसे महत्वपूर्ण किस कवि को माना गया है?

.....

.....

(iii) तानसेन अष्टछाप के किस कवि से पद गायन की शिक्षा लेते थे?

.....

.....

(iv) अष्टछाप से बाहर के किस कृष्णभक्त कवि ने 'अष्टयाम' की रचना की है?

.....

.....

(v) मीरांबाई की काव्यभाषा क्या है? तथा उस पर अन्य किन भाषाओं का प्रभाव है?

.....

.....

(ख) कृष्णभक्ति काव्य के वर्ण्य विषय की विशेषताएँ बताइए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) कृष्णभक्ति काव्य में भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.6 कृष्णभक्ति काव्य की शिल्पगत विशेषताएँ

6.6.1 काव्यरूप

हिंदी कृष्णभक्ति काव्य में प्रायः मुक्तक काव्य को प्रधानता मिली है। अपवाद रूप में कभी-कभार प्रबंध काव्य के भी दर्शन होते हैं, जैसे नंददास का 'भँवर-गीत'। मूलतः इन कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक की ओर अधिक झुकने के कारण इस काव्य में गेय पद परंपरा का विस्तार हुआ और हृदय प्रधान अंतर्मुखी वृत्तियों को काव्य में ढालने का अधिक अवसर मिला। अधिकांश कृष्णभक्त कवि संगीत के गहरे जानकार थे इसलिए संगीत के अनेक राग-रागनियों ने मौलिक रूपों में यहाँ स्थान पाया है। विशेष बात यह भी है कि नवधा भक्ति में कीर्तन,

स्मरण, स्तुति आदि को जो विशेष स्थान प्राप्त था उसने भी गीतात्मकता के विकास में योगदान दिया। यह भी सत्य है कि लीलाओं की तन्मयता ने भी हृदय के सभी बंधन तोड़कर आत्माभिव्यक्ति की। इस आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता के कारण ही आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'सूर-सागर' को गीतात्मक महाकाव्य कहते हैं। फिर इन कवियों ने भी लीला और गान दोनों को मिलाकर ही आगे बढ़ने में अपनी रुचि दिखाई है। सूरदास का प्रसिद्ध कथन है– 'सूर सगुन लीला पद गावै'। ये कवि पद कहते नहीं, पद गाते हैं और इन पदों में लोक संगीत से लोक हृदय एकाकार हो जाता है। संगीत की अनेक राग-रागिनियों के साथ इन कवियों ने अनेक वाद्य यंत्रों की चर्चा की है। इनमें सबसे बड़ा वाद्य यंत्र है – मुरली। मुरली जब बजती है तो संपूर्ण सृष्टि उसके साथ गूँजती है।

कृष्णभक्त कवियों के मुक्तक काव्य ने हिंदी की गीतिकाव्य परंपरा को नवीन दिशा और सृष्टि दी है।

6.6.2 काव्यभाषा

चलती हुई ब्रजभाषा को साहित्यिक ब्रजभाषा बनाने में सूरदास का नाम अग्रगण्य है। आचार्य शुक्ल ने ध्यान दिलाया है, ''सूरसागर किसी चली आती हुई गीतिकाव्य परंपरा का – चाहे वह मौखिक ही रही हो – पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है।'' धीरे-धीरे ब्रजभाषा का काव्य-भाषा के रूप में इन कवियों ने ऐसा विकास और परिष्कार किया कि उसकी सर्जनात्मक संभावनाएँ जनता को मुग्ध करने लगीं। कृष्णकाव्य के ऊपर ब्रजभाषा का एकछत्र अधिकार हो गया। यह भी अनुभव किया गया कि बाल और किशोर कोमल भावनाओं के वर्णन के लिए ब्रजभाषा जैसी मधुर और सरस भाषा दूसरी नहीं है।

कृष्णभक्त कवियों की ब्रजभाषा का शब्द भंडार अत्यंत विस्तृत है। संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी, अवधी, कन्नौजी, खड़ी बोली आदि के शब्दों के अतिरिक्त अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने किया है। संस्कृत के अर्द्ध-तत्सम और तद्भव शब्दों को अपनाने में इन कवियों की विशेष रुचि है तथा लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग में ये सिद्धहस्त हैं। उदाहरणस्वरूप :

वह मथुरा काजर की कोठरी, जे आवैं ते कारे।।

ब्रजभाषा के नाद सौंदर्य ने इस काव्य के ध्वनि-माधुर्य का विस्तार किया है। मीरां की ब्रजभाषा में राजस्थानी और गुजराती का प्रभाव है तो नंददास की काव्यभाषा में शब्द के आंतरिक सौंदर्य को पकड़ने की शक्ति है। अष्टछाप के कवियों ने ब्रजभाषा को इतना संगीतात्मक और कलात्मक बना दिया कि उसका सौंदर्य रीतिकाल के कवियों को लगातार अपनी ओर खींचता रहा।

6.6.3 प्रतीक और बिंब

ब्रजभाषा ने काव्यभाषा के रूप में अपनी शक्तियों के विकास के लिए और अनुभूति को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए बिंबों और प्रतीकों का कलात्मक ढंग से विकास किया। एक प्रकार से यह प्रतीकों से भरी हुई भाषा है। नाम प्रतीक, स्थान प्रतीक, दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक प्रतीक, उत्सव पूजा से संबंधित प्रतीक और मिथकों से जुड़ी प्रतीकात्मक कथाएँ इस काव्य में भरी पड़ी हैं। कृष्ण पूर्णावतार परम ब्रह्म के प्रतीक हैं तो राधा आह्लादिनी शक्ति और श्री शोभा की। गोपियाँ जीव की प्रतीक हैं और गोलोक इंद्रियों का। मुरली ब्रह्म की नाद शक्ति का प्रतीक है तो ब्रज कृष्ण की ब्रजन यात्रा का। ब्रज का अर्थ है जो लगातार

चलता है। जिस स्थान पर नित्य गायें चलती अथवा चरती हैं उस स्थान को ब्रज कहते हैं। यह ब्रज गोलोक का भी प्रतीक है। रासलीला भूलोक पर मुक्त आनंद का विस्तार है। भक्तिकालीन साहित्य में स्त्रियाँ यदि पुरुष की बराबरी में कहीं खड़ी हैं तो रासलीला के प्रसंग में ही है। गोबर्धन टीला कृष्ण विजय की मिथक गाथा का प्रतीक है। चौरासी कोस का ब्रजमंडल शरीर का प्रतीक है। मनुष्य मन के भीतर ही ब्रज है, वृंदावन गोलोक है, मथुरा है, राधा है, मुरली है, माधव है। राधाभाव से ही कृष्ण को पाया जा सकता है। इस तरह पूरी कृष्ण कथा ही प्रतीक है। मन वृंदावन में नवधा भक्ति से कृष्ण को साक्षात उतारा जा सकता है। गोकुल में बाल ब्रह्म (कृष्ण) लीला करता है और यह लीला भी प्रतीक है जिसमें समस्त इंद्रियों के बंधन से मुक्त होकर मानव ईश्वरत्व को प्राप्त होता है।

कृष्णकाव्य के कवियों की अभिव्यंजना शक्ति का संपूर्ण विकास उनके बिंब विधान में प्रकट होता है। इस कविता में अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता। यह अर्थ के साथ-साथ बिंब ग्रहण भी कराती है और इसके बिंब हमारी इंद्रियों के लिए मूर्त गोचर और निर्दिष्ट होते हैं। प्रकृति के उपमानों और स्थितियों को लेकर बिंब विधान का पूरा संसार खड़ा किया गया है। सूरदास एक ही पद में बिंबों की लड़ी बाँध देते हैं। इसे बिंब माला की कविता भी कहा जा सकता है। दृश्य और ध्वनि बिंब के संश्लिष्ट रूप यहाँ आते रहते हैं :

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरूनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए।
चारू कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए।

मनोदशाओं और कार्य व्यापारों को दिखाने वाले बिंब गति बिंब ही नहीं हैं, वे रूप और रंग से स्थिति का खुलासा भी करते हैं जैसे :

बिनु गुपाल बैरिनि भई कुंजैं।
तब वै लता लगति तन सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै।
वृथा बहति जमुना खग बोलत, वृथा कमल फूलनि अलि गुंजै।
पवन पान घनसार सजीवन दधिसुत किरनि भानु भई भुंजौ।।
यह उधो कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजै।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मन जोवत अंखियाँ भईं छुंजै।।

वियोग में लगातार रोती हुई आँख का आधी लाल और आधी काली होने का बिंब गुंजा या घुंघची से दिया गया है।

पशुचारण काव्य के सभी बिंबों का यह काव्य एक समृद्ध भंडार है। लय के संगीतपरक बिंब इस काव्य की एक अतिरिक्त शक्ति है। यह शक्ति नरोत्तमदास, रसखान और मीरां में साफ दिखाई देती है। रसखान के कवित्त और सवैये अपनी इसी शक्ति के कारण आज भी जनमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं। लोक भाषा में लोक बिंबों का यह संसार लोक हृदय की जीवंत संवेदना का रहस्य खोल देता है।

6.6.4 संगीत, छंद और लय

संपूर्ण कृष्णभक्ति काव्य संगीत की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ है। अष्टछाप के सभी कवि काव्यकला के साथ संगीत कला में पारंगत थे। इस तरह की किंवदंतियाँ मिलती हैं कि स्वयं सम्राट अकबर सूरदास का गायन सुनने के लिए वेश बदलकर जाया करते थे। कुंभनदास के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे विशेष आग्रह पर संगीत आयोजन में भाग लेने फतेहपुर

सीकरी आए थे। गोविंदस्वामी के लिए प्रसिद्ध है कि तानसेन उनसे संगीत सीखने आते थे। इन कवियों ने कीर्तन संग्रह की भी परंपरा चलाई। 'राग कल्पद्रुम' और 'राग रत्नाकर' इसी तरह के पद संग्रह हैं। अनेक शास्त्रीय राग रागिनियों को इन कवियों ने जन्म दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अष्टछाप में सबसे ऊँची रागिनी उठाने वाले कवि के रूप में सूरदास का स्मरण किया है। पुष्टिमार्ग में लयात्मक कीर्तन के आधार आंतरिक चित्त वृत्तियों से जुड़े हैं। अतः कह सकते हैं कि इन कवियों की कविता की अंतर्वर्ती लय नादब्रह्म की खोज से जुड़ी हुई है। अष्टछाप में पूजा की एक लय प्रचलित रही और आरती के गीत लिखे गए। लय को आधार बना कर इन कवियों ने अनेक प्रकार के छंदों में अपनी कविताएँ लिखीं। रसखान ने कवित्त और सवैया छंद में हृदय संगीत को अमर कर दिया। रसखान की 'प्रेम वाटिका' में दोहे हैं और 'सुजान रसखान' में कवित्त-सवैये। प्रायः पद राग-रागिनियों के आधार पर लिखे गए हैं और इन पदों में रोला, दोहा आदि छंदों का प्रयोग मिलता है। नंददास ने भी रोला और दोहा के प्रयोग कम नहीं किए हैं। 'सूरसागर' के अनेक स्थलों में रोला और चौपाई, राधिका, रूप माला सरसी, गीतिका, लावनी का प्रयोग किया गया है। अधिकांश छंद ऐसे अपनाए गए हैं जो कीर्तन की पद्धति में सहायक रहे हैं। 'सुदामा चरित' में कवित्त और सवैया पद्धति को पुनः अविष्कृत किया। इस तरह कृष्णभक्ति परंपरा गेय छंदों को आधार बना कर विकसित होती रही।

6.6.5 अलंकार विधान

कृष्णभक्त कवियों का अलंकार विधान चमत्कारों के लिए न होकर हृदय के भावों को व्यक्त करने का एक अनिवार्य माध्यम है। भारतीय काव्यशास्त्र जिन अलंकारों की चर्चा करता रहा है– चाहे वे शब्द पर आधारित अलंकार हों या अर्थ पर आधारित अलंकार – प्रायः वे सभी इनमें पाये जाते हैं। कृष्णभक्ति काव्य भावों का उमड़ता हुआ सागर है। इसमें शृंगार का अथाह जल भरा है। भावोद्रेक की शक्ति ने वर्णन शैली में वक्रता और चमत्कृति को जन्म दिया है। किंतु पांडित्य प्रदर्शन वाला चमत्कार दिखाना इन कवियों का ध्येय नहीं रहा। इन कवियों का ध्यान वस्तु पर केंद्रित रहा, चमक-दमक प्रधान मिथ्या आडंबर पर नहीं। इन सभी कवियों ने अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से सौंदर्यबोध के लिए किया। उदाहरणार्थ यदि हम सूरदास को ही देखते हैं तो वे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, वक्रोक्ति, मालोपमा आदि अलंकारों का खुले मन से प्रयोग करते हैं। अन्योक्ति अलंकार तो अपूर्व सौंदर्य के साथ आया है। सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग में अन्योक्ति अलंकार ने ही भाव चमत्कार पैदा किया। कहा जाता है कि 'साहित्य लहरी' की रचना सूरदास ने शब्दालंकारों के प्रदर्शन के लिए ही की थी। शब्दालंकारों में उन्होंने यमक, अनुप्रास, वीप्सा, श्लेष और वक्रोक्ति का प्रयोग किया है। श्लेष और यमक दृष्टकूट के पदों में भरे पड़े हैं किंतु जहाँ कहीं अनुप्रास आया है वहाँ ध्वन्यात्मक सौंदर्य की वृद्धि के लिए ही उसका प्रयोग हुआ है। सांग रूपकों के लिए सूरदास प्रसिद्ध हैं। जैसे :

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम क्रोध कौ पहिरि चोलना कंठ विषय की भाल।।
महामोह के नूपुर बाजत निंदा सबद रसाल
भ्रम भोयौ मन भयौ पखाबज चलत असंगत चाल।।

हिंदी के कृष्णभक्त कवियों में नए से नए उपमानों की कमी नहीं है। इसलिए इनका अलंकार विधान सजीव सार्थक और मनोहारी है। भगवान के गुणानुवाद में अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति और विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग सभी कवियों ने खुलकर किया है। चकई, भृंगी, सुआ आदि से संबंधित पदों में अन्योक्ति अलंकार पूरी शोभा के साथ मौजूद हैं।

बोध प्रश्न-3

1. कृष्णभक्ति काव्य के अष्टछाप से बाहर के कवियों का परिचय दीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.7 सारांश

- सगुण काव्यधारा का विश्वास ईश्वर के अवतारी रूप में है। इसमें विष्णु के दस अवतारों में राम और कृष्ण के अवतार की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। इन्हीं दोनों अवतारों को आधार बनाकर सगुण भक्तिधारा में रामभक्ति काव्य तथा कृष्णभक्ति काव्य का विकास हुआ।
- कृष्णभक्ति काव्य के विकास में वल्लभ संप्रदाय, माधव संप्रदाय, विष्णु संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय – आदि विभिन्न संप्रदायों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।
- कृष्णभक्ति काव्य में सूरदास आदि अष्टछाप के कवि काफी प्रसिद्ध हुए। ये सभी वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग से संबद्ध थे, जिनका दार्शनिक सिद्धांत शुद्वाद्वैत कहलाता है।
- अष्टछाप से इतर मीरांबाई, रसखान आदि कृष्णभक्ति काव्य के अन्य प्रसिद्ध कवि हुए।
- कृष्णभक्ति काव्य में मुख्य रूप से कृष्ण की लीलाओं के गायन की परंपरा रही। मुक्तक इस धारा का मुख्य काव्य-रूप है। मुक्तक में लिखे गए ये पद विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध हैं। इनकी भाषा मुख्य रूप से ब्रजभाषा है।

6.8 शब्दावली

रागानुगा भक्ति : भगवान के प्रति घोर आसक्ति अथवा राग पर आधारित भक्ति को रागानुगा भक्ति कहा गया है। इसे मधुराभक्ति, प्रेमाभक्ति या उज्ज्वल भक्ति भी कहते हैं।

दृष्टकूट के पद : सूरदास द्वारा रचित वे पद जो क्लिष्ट संध्या भाषा में लिखे गए हैं। इनमें संतों की उलटबाँसियों की भाँति आशय को स्पष्ट शब्दों में प्रकट न करके प्रतीक भाषा में प्रस्तुत किया गया है। इनका अर्थ काफी कठिनाई से निकाला जाता है।

प्रेमलक्षणा भक्ति : प्रेम पर आधारित भक्ति।

गोचर : दिखाई देने वाला।

मायावाद : शंकराचार्य ने अद्वैत मत के अंतर्गत मायावाद का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है शेष संपूर्ण जगत मिथ्या है।

मिथक : अंग्रेजी के 'मिथ' (Myth) शब्द के लिए हिंदी में मिथक शब्द प्रयुक्त होता है। दंतकथा, पुरावृत्त, पुराकथा, पुराख्यान आदि शब्दों को भी इस अर्थ में प्रयोग किया जाता है। मिथक को 'आदिमबिंब' भी कहा जा सकता है क्योंकि मनोविज्ञान के अनुसार मिथक अवचेतन मन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। इस प्रकार मिथक के माध्यम से मनुष्य जीवन और प्रकृति के रहस्यों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ अलौकिक गाथाओं के रूप में व्यक्त करता रहा है। इसलिए इसे आदिम मनुष्य की भाषा भी कहा जाता है।

6.9 उपयोगी पुस्तकें

- *अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय* – दीनदयालु गुप्त, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
- *सूरदास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
- *सूरदास (विनिबंध)* – मैनेजर पांडेय, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
- *मध्ययुगीन हिंदी काव्य-भाषा* – डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(क) (i) शुद्धाद्वैत

(ii) विद्यापति

(iii) गुप्त

(iv) राधा

(v) वल्लभाचार्य

(ख) देखें – भाग 6.3

बोध प्रश्न-2

(क) (i) हिंदी में कृष्णकाव्य संबंधी गीति काव्य परंपरा के प्रमुख प्रवर्तक कवि विद्यापति हैं।

(ii) अष्टछाप के कवियों में काव्य-सौंदर्य और दार्शनिकता की दृष्टि से सूरदास के बाद सबसे महत्वपूर्ण कवि नंददास हैं।

(iii) तानसेन गोविंदस्वामी से पद गायन की शिक्षा लेते थे।

(iv) अष्टछाप से बाहर के कृष्णभक्त कवि रसखान ने 'अष्टयाम' की रचना की है।

(v) मीरांबाई की काव्यभाषा ब्रजभाषा है, जिस पर राजस्थानी तथा गुजराती का प्रभाव है।

(ख) देखें – भाग 6.5.2

(ग) देखें – भाग 6.5.1

बोध प्रश्न-3

देखें – भाग 6.3 तथा 6.4

इकाई 7 रामभक्ति काव्यधारा

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 भक्ति आंदोलन और सगुण रामभक्ति धारा

- 7.2.1 रामभक्ति साहित्य का विकास
- 7.2.2 हिंदी में सगुण रामकाव्य परंपरा
- 7.2.3 सगुण रामभक्ति काव्य में समन्वय साधना
- 7.2.4 रामभक्ति काव्यधारा के दार्शनिक सिद्धांत
- 7.2.5 निर्गुण संतों का प्रभाव
- 7.2.6 रामभक्ति धारा और आगम निगम परंपरा

7.3 सगुण रामभक्ति धारा में राम का लोकनायक रूप

7.4 सगुण रामभक्ति धारा में रामभक्ति का निरूपण

7.5 सगुण रामकाव्य धारा का भाव-सौंदर्य

7.6 सगुण रामकाव्य धारा का अभिव्यंजना सौंदर्य

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 उपयोगी पुस्तकें

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस खंड की प्रथम तीन इकाइयों में आप भक्तिकाव्य की संत काव्यधारा, सूफी काव्यधारा तथा कृष्णभक्ति काव्यधारा की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। यह इस खंड की चौथी और अंतिम इकाई है। इस इकाई में सगुण भक्तिकाव्य की रामभक्ति काव्यधारा के बारे में जानकारी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रामभक्ति काव्यधारा की पृष्ठभूमि और उसके विकास की जानकारी दे सकेंगे;
- रामभक्ति काव्यधारा के विभिन्न कवियों के योगदान पर प्रकाश डाल पाएँगे;
- रामभक्ति काव्य से संबंधित 'समन्वय साधना' के स्वरूप को स्पष्ट कर पाएँगे;
- रामभक्ति काव्यधारा के भावपक्ष के बारे में बता सकेंगे तथा
- रामभक्ति काव्य के अभिव्यंजना पक्ष की जानकारी दे पाएँगे।

7.1 प्रस्तावना

भारतीय परंपरा में राम के व्यक्तित्व को आधार बनाकर काव्य-रचना प्राचीन समय से होती आ रही है। सिर्फ हिंदू परंपरा में ही नहीं, बौद्ध और जैन परंपरा में भी राम के व्यक्तित्व पर काव्य रचनाएँ हुई हैं। रामकाव्य का विकास संस्कृत से शुरू होकर प्राकृत, पालि और अपभ्रंश होते हुए हिंदी तक पहुँची है। हिंदी में रामानंद रामभक्ति के प्रारंभिक आचार्य हैं। तुलसी ने अपनी रचना 'रामचरितमानस' के द्वारा रामभक्ति काव्य को घर-घर में लोकप्रिय बना दिया। रामभक्ति काव्य में ईश्वर के अवतार को स्वीकार करते हुए रामावतार के विविध पक्षों पर काव्य-रचना की गई है, लेकिन रामकाव्य की मौलिक विशिष्टता 'समन्वय' पर जोर देना है। इस काव्यधारा में ईश्वर के अवतारी रूप का लीला-गान करने के साथ ही उसके निर्गुण स्वरूप को भी स्वीकारा गया। रामभक्ति काव्यधारा में प्रबंध तथा मुक्तक – दोनों प्रकार की रचना की गई है। आगे रामकाव्य के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डाला जा रहा है।

7.2 भक्ति आंदोलन और सगुण रामभक्ति धारा

7.2.1 रामभक्ति साहित्य का विकास

संस्कृत : संस्कृत साहित्य में रामकाव्य परंपरा को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– (क) पुराण-साहित्य में रामकाव्य (ख) प्रबंधों में रामकाव्य और (ग) नाट्य साहित्य में रामकाव्य।

(क) पुराण साहित्य में रामकाव्य : पुराण साहित्य में 'वाल्मीकि रामायण' को रामकाव्य परंपरा का स्रोत माना जा सकता है। इसके रचना-काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। श्लेगिल ने इसे ई.पू. ग्यारहवीं शताब्दी की रचना माना है तो डॉ. याकोबी इसे छठी और आठवीं शताब्दी की रचना स्वीकार करते हैं। कीथ इसे चौथी शताब्दी ई.पू. से अधिक प्राचीन नहीं मानते तथा डॉ. विण्टर नित्स इसे तीसरी शताब्दी ई. पू. की रचना स्वीकार करते हैं। किंतु अपने मूल रूप में वाल्मीकि रामायण ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी ई.पू. की रचना अवश्य है। वाल्मीकि रामायण के तीन पाठ भेद प्राप्त होते हैं– दक्षिणात्य पाठ, गौड़ीय पाठ तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ। गौड़ीय और पश्चिमोत्तरीय पाठों में प्रायः समानता है। प्रचलन की दृष्टि से दक्षिणात्य पाठ का अधिक महत्व है। 'वाल्मीकि रामायण' में राम के चरित्र को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह परवर्ती रामकाव्य का आधार बना है। इतने विस्तार से राम के चरित्र का अंकन करने वाला कोई अन्य ग्रंथ नहीं है। प्रचलन की दृष्टि से केवल 'श्रीमद् भागवत' और 'रामचरितमानस' ही 'वाल्मीकि रामायण' की तुलना में रखे जा सकते हैं। 'वाल्मीकि रामायण' के बाद राम के चरित्र को आंशिक रूप से अभिव्यक्ति देने वाला दूसरा ग्रंथ 'महाभारत' है। इसके अधिकांश प्रसंग 'वाल्मीकि रामायण' से समर्थित हैं। इसमें सबसे विस्तृत 'रामोपाख्यान' है जो 704 श्लोकों में वर्णित है। यहाँ सीता जनक की पुत्री है न कि भूमि से उत्पन्न होने वाली कन्या। इसमें गुह, निषाद तथा अत्रि का उल्लेख नहीं है। लक्ष्मण का शक्ति-प्रसंग भी नहीं मिलता। सीता की अग्नि परीक्षा नहीं होती। एक संभावना यह भी व्यक्त की जाती है कि 'रामोपाख्यान' रामायण की मौखिक परंपरा पर भी आधारित हो सकता है। महाभारत के बाद रामकथा का आधार धार्मिक हो जाता है। पुराणों में विष्णु, वायु, भागवत, कूर्म, वाराह, अग्नि, लिंग, वामन, ब्रह्म, गरुड़, पद्म, स्कंद, ब्रह्मवैवर्त पुराण में रामकथा धार्मिक पक्ष की प्रधानता लेकर अभिव्यक्त होती है। पुराण-साहित्य के अतिरिक्त रामायण शीर्षक से भी अनेक ग्रंथ मिलते हैं जिनमें मूल, ब्रह्म, महा, मंत्र,

लोमश, अगस्त्य, मंजुल, सौहार्द्र, स्वयंभू, देव, श्रवण, दुरंत आदि रामायण प्रमुख हैं। इस पौराणिक और धार्मिक साहित्य की परिणति अंततः रसिक संप्रदाय में हुई।

(ख) प्रबंध काव्य – संस्कृत में जितने भी प्रबंध काव्यों की रचना हुई वे प्रायः 'वाल्मीकि रामायण' पर ही आधारित हैं। कालिदास कृत 'रघुवंश' में अलौकिक घटनाओं को भी काव्य-सौंदर्य में ढालकर अभिव्यक्त किया गया है। 'महिकाव्य' में राम-कथा के साथ-साथ व्याकरण के नियमों का भी संकेत किया गया है। इस कृति पर शैवमत का प्रभाव होते हुए भी राम का ब्रह्मत्व पूरी तरह स्पष्ट है। कुमारदास कृत 'जानकी हरण' में रामायण के पहले छः खंडों की कथा को आधार बनाया गया है। इसकी प्रवृत्ति पूरी तरह शृंगारिक है। क्षेमेंद्र कृत 'रामायण मंजरी', 'दशावतार चरितम्', साकल्य मल्ल कृत 'उदारराघव', चक्र कवि कृत 'जानकी परिणय', अद्वैत कृत 'राघवोल्लास' भी इस परंपरा की विशिष्ट कृतियाँ हैं।

(ग) नाटक – नाटकों की परंपरा में भास कृत 'प्रतिमा' पहला नाटक है जिसमें रामकथा को 'रघुवंश' के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इसमें राम के वनवास से रावण-वध तक की कथा है। भास के ही दूसरे नाटक 'अभिषेक' में बालि-वध से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन किया गया है। भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित' में करुण रस की प्रधानता है। इस नाटक में सीता के वनवास की कथा को प्रस्तुत किया गया है। करुण रस प्रधान होते हुए भी यह नाटक दुःखांत नहीं है। अनंग हर्ष मातृराज कृत 'उदात्त राघव' छः अंकों का नाटक है जिसमें वनवास से लेकर राम के अयोध्या वापस लौटने तक की कथा का वर्णन है। दिङनाग कृत 'कुंद माला', मुरारि कृत 'अनर्घराघव', राजशेखर कृत 'बाल रामायण', शक्तिप्रद कृत 'आश्चर्य चूड़ामणि', जयदेव कृत 'प्रसन्नराघव', सोमेश्वर कृत 'उल्लास राघव', मल्ल कृत 'मैथिलीकल्याण', रामभद्र कृत 'जानकी परिणय' आदि विशिष्ट नाट्य कृतियाँ हैं जिनमें राम के चरित्र को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

पालि, प्राकृत और अपभ्रंश – बौद्ध जातक ग्रंथों में बौद्ध मत के अनुरूप रामकथा को ग्रहण किया गया है। इसके बाद प्राकृत में जैन कवियों ने ऐसी अनेक कृतियों की रचना की जिनमें रामकथा को ग्रहण किया गया है। इनमें सर्वप्रथम विमल सूरि द्वारा रचित 'पउम चरियम्' का उल्लेख करना संगत होगा। इसकी रचना विक्रम संवत् 60 में मानी जाती है। इस ग्रंथ का रामकथा की दृष्टि से तो महत्व है ही साहित्यिक, भाषा शास्त्रीय, ऐतिहासिक और सामाजिक महत्व भी है। इसके बाद 'वसुदेव हिंडी' ग्रंथ का उल्लेख मिलता है जो दो खंडों में है। पहले खंड के प्रणेता संघ दास गणिवाचक हैं और दूसरे खंड के धर्म सेन गणीमहतर। पहले खंड की भाषा जैन प्राकृत है और दूसरे की भाषा मागधी शौरसेनी है। प्रथम खंड के पाँच-सात पृष्ठों में राम-कथा का वर्णन है जो महत्वपूर्ण है। इन जैन राम कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें अवतारवाद की भावना नहीं है। अलौकिकता का स्थान तार्किकता ने ले लिया है। अपभ्रंश के जैन राम साहित्य के अंतर्गत दो ग्रंथ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं– स्वयंभू कृत 'पउमचरियउ' और पुष्पदंत कृत 'महापुराण'। 'पउमचरियउ' आठवीं और नवीं शताब्दी के बीच की रचना है और 'महापुराण' दसवीं शताब्दी की।

7.2.2 हिंदी में सगुण रामकाव्य परंपरा

हिंदी के रामकाव्य की कथावस्तु का स्रोत संस्कृत के रामकाव्य संबंधी काव्यग्रंथ हैं, खासकर वाल्मीकि कृत 'रामायण'। लेकिन भक्ति आंदोलन के रामभक्त कवियों ने इसे युग की सामाजिक-राजनीतिक चेतना के अनुरूप विकसित किया। भक्ति आंदोलन के रामकाव्य में

समन्वय और मर्यादा पर सबसे ज्यादा जोर दिया गया है। भक्ति आंदोलन के रामकाव्य की एक खास विशेषता इसकी राजनीतिक चेतना है। तुलसीदास की कविताओं में हिंदी साहित्य में पहली बार इतनी प्रमुखता से राजा के कर्त्तव्य तथा एक आदर्श राज्य की परिकल्पना व्यक्त की गई है। तुलसी की प्रायः सभी रचनाओं में नैतिकता और मर्यादा का विशेष आग्रह है, पर साथ ही रामभक्ति काव्य में अग्रदास, नाभादास, केशवदास आदि ने रसिक ग्रंथ भी लिखे हैं। यहाँ हिंदी के प्रमुख रामभक्त कवियों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है :

रामानंद– अंग्रेज लेखक फर्कुहर ने इनका समय 1400-1470 ई. तक स्थिर किया है। इनका जन्म काशी में हुआ। रामानंद ने श्री वैष्णव संप्रदाय के आचार्य राघवानंद से दीक्षा ली। वर्णाश्रम धर्म में आस्था रखते हुए भी इन्होंने सभी वर्णों को भक्ति मार्ग का अधिकारी माना है। हिंदी में लिखे इनके कुछ पद बहुत प्रसिद्ध हैं। यथा :

आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की।।
जाके बल गरजे महि काँपे। रोग सोग जाके सिमाँ न जाँये।।

रामभक्ति से संबंधित इनका एक पद देखिए :

मूरष तन धर कहा कमायौ। राम भजन बिन जनम गमायौ।।
राम भगति गत जांणी नाहीं। भंदू भूलौ धंधा माहीं।।

अग्रदास– इनका जन्म सोलहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ। इन्होंने अपनी कृतियों में भक्ति भावना के साथ-साथ कवित्व का भी सुंदर परिचय दिया है। सुंदर पद रचना तथा अलंकारों के सुंदर प्रयोग के द्वारा इन्होंने अपने साहित्य में शास्त्रीय ज्ञान को प्रमाणित किया है। इनकी प्रमुख कृतियों मे 'ध्यानमंजरी', 'राम भजन मंजरी', 'रामाष्टयाम', 'उपासना बावनी' और 'पदावली' है। इन्होंने ब्रजभाषा का लालित्यपूर्ण प्रयोग किया है। वस्तुतः अग्रदास जी से ही रामकाव्य के रसिक संप्रदाय का प्रवर्तन होता है। 'रामाष्टयाम' से इनके रसिक होने का परिचय मिलता है।

ईश्वरदास– विद्वानों ने ईश्वरदास जी की कृति 'सत्यवती कथा' (1501 ई.) के आधार पर इनकी जन्मतिथि 1480 ई. के आसपास स्वीकार की है। इनकी दो कृतियाँ 'भरत मिलाप' तथा 'अंगद पैज' रामचरित्र से संबंधित हैं। 'भरत मिलाप' का आरंभ राम वन गमन से होता है तथा भरत के आग्रह पर राम के वन से न लौटने पर भरत के द्वारा पर्णकुटी बनाकर निवास करने के प्रसंग पर रचना समाप्त हो जाती है। 'अंगद पैज' में रावण की सभा में अंगद की प्रतिज्ञा का प्रसंग निरुपित किया गया है। दोनों कृतियों का साहित्यिक महत्व साधारण है किंतु कवि की भक्ति भावना की इन कृतियों में उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

तुलसीदास– गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन वृत्त के संबंध में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है। बेनीमाधवदास द्वारा प्रणीत 'मूल गोसाईं चरित' तथा महात्मा रघुबर दास कृत 'तुलसी चरित' में गोस्वामी जी का जन्म संवत् 1554 (1497 ई.) स्वीकार किया गया है। बेनीमाधव ने तो गोस्वामी जी की जन्मतिथि (श्रावण शुक्ला सप्तमी) भी निर्दिष्ट की है। 'शिव सिंह सरोज' में इनका जन्म संवत् 1583 (1526 ई.) माना गया है। पं. राम गुलाम द्विवेदी ने इनका जन्म 1589 (1532 ई.) में स्वीकार किया है। इनके जन्म के साथ-साथ जन्म स्थान के संबंध में भी विवाद है। 'मूल गोसाईं चरित' तथा 'तुलसी चरित' में इनका जन्म स्थान राजापुर (बाँदा जिला) बताया गया है। लाला सीता राम, गौरीशंकर द्विवेदी, राम नरेश त्रिपाठी, डॉ. रामदत्त भारद्वाज गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म स्थान सोरो (जिला एटा) मानते हैं। जनश्रुति के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी

था। अंतरसाक्ष्यों से यह भी प्रमाणित होता है कि इनका बचपन विषम परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। जनश्रुति के अनुसार इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ। पत्नी के उपालंभ 'लाज न आई आपको दौरे आएहुं साथ' से इनकी भाव धारा सहसा लौकिक विषयों से विमुख होकर रामभक्ति की ओर उन्मुख हो गई। शुक्ल जी ने गोस्वामी जी द्वारा रचित बारह ग्रंथ माने हैं– 'दोहावली', 'कवित्त रामायण', 'गीतावली', 'रामचरितमानस', 'रामाज्ञा प्रश्न', 'विनय पत्रिका', 'रामलला नहछू', 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल', 'बरवै रामायण', 'वैराग्य संदीपनी' और 'कृष्ण गीतावली'। 'शिवसिंह सरोज' में दस और ग्रंथों के नाम गिनाए गए हैं– 'राम सतसई', 'संकटमोचन', 'हनुमद बाहुक', 'रामशालाका', 'छंदावली', 'छप्पय रामायण', 'कड़खारामायण', 'रोला रामायण', 'झूलनारामायण' और 'कुंडलिया रामायण'। इन ग्रंथों की प्रामाणिकता के संबंध में विद्वानों में विवाद है।

गोस्वामी जी ने एक ओर नाथपंथियों के प्रभाव से नष्ट होती हुई जनमानस की आस्था को रामभक्ति के माध्यम से पुनः पल्लवित किया और दूसरी ओर रामकथा के विविध प्रसंगों के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक जीवन के विविध आदर्शों को जनता के समक्ष प्रस्तुत कर विशृंखलित हिंदू समाज को केंद्रित किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में ''इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यापारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भागवद्भक्ति का उपदेश करती है तो दूसरी ओर लोक पक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का सौंदर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोक धर्म की अत्यंत उज्जवल छटा उसमें वर्तमान है।'' उन्होंने परस्पर विरोधी विचारधाराओं, जीवन धाराओं और जीवन-पद्धतियों में समन्वय की साधना करते हुए काव्य-मूल्यों और जीवन-मूल्यों के बीच अद्भुत सेतु की रचना की। 'रामचरितमानस' को यदि नैतिक आदर्शों का विश्वकोश कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। नैतिक आदर्शों का यह प्रस्तुतीकरण काव्य-सौंदर्य के रस में पूरी तरह पगा हुआ है। शुक्ल जी के शब्दों में 'हम निस्संकोच कह सकते हैं कि यह एक कवि ही हिंदी को एक प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।' रामकाव्य परंपरा के संपूर्ण विकास में तुलसी अद्वितीय हैं ।

नाभादास– इनकी रचना 'भक्तमाल' का रचनाकाल 1596 ई. माना जाता है। इस आधार पर उनका जन्म 1570 ई. के आसपास ठहरता है। इन्होंने 'भक्तमाल' परंपरा का सूत्रपात करते हुए हिंदी को सर्वश्रेष्ठ 'भक्तमाल' प्रदान की। भक्तों का परिचय देने में समास शैली का कुशल उपयोग किया गया है। 'अष्टयाम' इनकी श्रृंगार रस से ओतप्रोत रचना है जिसमें रसिक भक्ति का प्रभाव स्पष्ट है। इनकी कृतियों से स्पष्ट है कि इन्हें छंदशास्त्र का ही नहीं बल्कि भारतीय काव्यशास्त्र का अच्छा ज्ञान था।

केशवदास– इनका जन्म 1555 ई. में तथा मृत्यु 1617 ई. में हुई। ओरछा के राजा महाराज राम सिंह के भाई इंद्रजीत सिंह की सभा में अपने पांडित्य के कारण इनका अतिशय सम्मान था। इनकी कृतियाँ हैं– 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया', 'वीरसिंह चरित', 'रामचंद्रिका', 'विज्ञानगीता', 'रतनबावनी' और 'जहाँगीर जस चंद्रिका'। 'रामचंद्रिका' (1601 ई.) हिंदी रामकाव्य परंपरा की विशिष्ट कृति है। 39 प्रकाशों में विभाजित इस कृति के अनेक प्रसंगों पर 'प्रसन्नराघव', 'अनर्घराघव', 'हनुमन्नाटक', 'कादंबरी' आदि का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। प्रबंध दृष्टि से अनेक कथा-प्रसंग विशृंखल हैं। मार्मिक प्रसंगों का भी 'रामचंद्रिका' में प्रायः अभाव है। इसका कारण है अलंकारों और शब्द-चमत्कार के प्रति अतिरिक्त आकर्षण। वाग्वैदग्ध्य 'रामचंद्रिका' की एक अनुपम विशेषता है जो निस्संदेह केशव के दरबारी परिवेश की देन थी।

नरहरिदास– नरहरिदास ने 'पौरुषेय रामायण' की रचना की। इसकी रचना शैली रासो ग्रंथ जैसी है। 'वाल्मीकि रामायण' को इस कृति में आधार माना गया है। दोहा-चौपाई पद्धति का अनुसरण करते हुए भी कवित्त, सवैया, छप्पय, पद्धरि आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। भाषा राजस्थानी और ब्रज मिश्रित अवधी है। साहित्यिक दृष्टि से इस रचना का विशेष महत्व नहीं है।

रामकाव्य परंपरा के इन कवियों के अतिरिक्त प्राणचंद चौहान ('रामायण महानाटक'), माधवदास चारण ('राम रासो'), हृदय राम ('हनुमन्नाटक'), लाल दास ('अवध विलास'), कपूर चंद्र त्रिखा ('रामायण' जो गुरुमुखी लिपि में है) आदि भी इस परंपरा के विशिष्ट कवि हैं।

बोध प्रश्न-1

(क) निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

(i) वाल्मीकि रामायण के तीन पाठ भेद मिलते हैं।

(ii) जैन ग्रंथ 'महापुराण' के लेखक स्वयंभू हैं।

(iii) 'उत्तर रामचरित' में वीर रस की प्रधानता है।

(iv) 'अंगद पैज' के लेखक अग्रदास हैं।

(v) 'भक्तमाल' की परंपरा की शुरूआत नाभादास से हुई।

(ख) रामभक्त कवि के रूप में केशवदास के योगदान की चर्चा कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश में रामकथा के विकास पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

7.2.3 सगुण रामभक्ति काव्य में समन्वय साधना

'समन्वय' शब्द का आशय है – नियमित क्रम, संयोग, पारस्परिक संबंध आदि। वस्तुतः परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली वस्तुओं या बातों के बीच पारस्परिक संबंध का निर्धारण करते हुए

उनमें सामंजस्य स्थापित करना ही समन्वय है। समन्वय भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता है। नास्तिक बौद्धों द्वारा राम को बोधिसत्व मान लेना तथा आस्तिक बौद्धों द्वारा बुद्ध के अवतार के रूप में प्रतिष्ठा इस समन्वय का ही परिणाम है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति की समन्वयमूलकता के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

राम काव्यधारा में समन्वय का यह आदर्श तुलसी में ही प्रतिफलित हुआ। उन्होंने इस आदर्श को 'रामचरितमानस' में अनेक दृष्टियों से निरुपित किया है। द्वैत और अद्वैत के बीच समन्वय को तुलसी ने अवतारवाद की प्रतिष्ठा करते हुए ब्रह्म को उपनिषदों और वेदांत के अनुसार निर्गुण और निर्विशेष भी स्वीकार किया है। निर्गुण और सगुण का वह विवाद जो क्रमशः दर्शन और भक्ति के क्षेत्रों में विद्यमान था, को समाप्त करने के लिए उन्होंने राम को बार-बार निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वरूप में अभिव्यक्त किया है, साथ ही उन्होंने इन दोनों स्वरूप में अभेद स्थापित किया :

(i) सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा।।

(ii) अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।

(iii) जय सगुन निर्गुन रूप, रूप अनूप भूप सिरोमने।

इसी प्रकार जगत की सत्यता और असत्यता के बीच गोस्वामी जी ने सुंदर समन्वय स्थापित किया। जैसे :

जगत की असत्यता – रजत सीम महुँ मास जिमि जथा भानु कर बारि।

जगत की सत्यता – निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।

भाग्य और पुरुषार्थ के समन्वय के लिए उन्होंने 'पुरुषारथ पूरब करम परमेस्वर परधान। तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहि काज अनुमान।।' का तर्क प्रस्तुत किया। ईश्वर से जीव के भेद और अभेद के विवाद का परिहार उन्होंने इस आधार पर किया कि स्वरूप की दृष्टि से ईश्वर और जीव में अभेद है किंतु ऐश्वर्य की दृष्टि से दोनों में भेद है। मुक्त होने पर जीव ईश्वर का स्वरूप तो प्राप्त कर लेता है किंतु ऐश्वर्य नहीं। शैवों और वैष्णवों के बीच विद्यमान विरोध का शमन उन्होंने स्वयं अपने आराध्य श्री राम से सेतुबंध के अवसर पर शिव की पूजा के द्वारा कराया है। राम का स्पष्ट कहना है :

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भवि घोर नरक महुँ बास।।

इसी प्रकार वर्णाश्रम धर्म और मानवता के बीच उन्होंने, 'पर हित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई' कह कर समन्वय किया तो लोकमत और वेदमत के समन्वय के लिए उन्होंने 'सरजू नाम सुमंगल गुला। लोक वेदमत मुजुल कूला' का रूपक प्रस्तुत करते हुए इस आदर्श को अपने काव्य में प्रस्तुत किया। इसी प्रकार भोग और त्याग, राजा और प्रजा तथा भाव पक्ष और कला पक्ष के बीच भी गोस्वामी जी ने सुंदर समन्वय साधा है। सच तो यह है कि जीवन का कोई भी ऐसा परस्पर विरोधी पक्ष नहीं है जिसे उन्होंने अपनी समन्वय दृष्टि से आलोकित न किया हो। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है, ''उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।''

7.2.4 रामभक्ति काव्यधारा के दार्शनिक सिद्धांत

तुलसी से पूर्व राम की माधुर्योपासना विद्यमान थी। विशेष रूप से अग्रदास ने रामरसिकों का

एक सुव्यवस्थित संप्रदाय संगठित किया और उन्हें कृष्ण भक्तों के गोलोक से भी अधिक वैभवपूर्ण साकेत अथवा दिव्य अयोध्या में नित्य लीलारत राम के ध्यान का उपदेश दिया। कृष्णभक्ति में भगवान की लौकिक लीलाओं को प्रधानता दी जाती थी, किंतु रामभक्ति की इस शाखा में अपने आराध्य की अलौकिक लीलाओं का गायन किया गया। तुलसी ने अपने दार्शनिक चिंतन को सुव्यवस्थित और गंभीर रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने विशिष्टाद्वैत के अनुसार ब्रह्म और जीव के बीच अंशी और अंश का संबंध माना है। ब्रह्म के विषय में उनका मत है कि व्यापक विश्वरूप ब्रह्म ही शरीर धारण कर नाना प्रकार की लीलाएँ किया करता है। सगुण उपासक को वे मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी नहीं मानते किंतु ऐसा उपासक मोक्ष चाहता भी कहाँ है? उसे तो अपने भगवान की भक्ति से ही पूर्ण काम है। उन्होंने इस जगत को 'सियाराममय' मान कर उसको प्रणाम किया है। जीव की वे तीन कोटियाँ मानते हैं – बद्ध, मुमुक्षु और मुक्त – 'विषयी साधक सिद्ध सपाने। त्रिविधि जीव जग वेद बखाने।' बद्ध जीव माया में लिप्त रहता है –'भूमि परतभा डाबर पानी। जनुजीवहि माया लपटानी।' यह माया भी दो प्रकार की है– विद्या माया और अविद्या माया। विद्या माया सृजन का आधार है और अविद्या माया जीव को अपने में लिप्त करने के कारण उसके दुख का कारण है। तुलसी के बाद रामकाव्य परंपरा के दार्शनिक चिंतन में कोई मौलिक बदलाव आता नहीं दीखता।

7.2.5 निर्गुण संतों का प्रभाव

तुलसी ने निर्गुण और सगुण के विवाद को 'अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा' कह कर दोनों को समन्वय के सूत्र में बाँधा था। उनकी सगुण साधना पर निस्संदेह निर्गुण संतों का भी व्यापक प्रभाव पड़ा था। जिस प्रकार निर्गुण संतों ने गुरु के महत्व को बार-बार रेखांकित किया था, उसी प्रकार रामभक्ति धारा के कवियों – विशेष रूप से तुलसी ने 'श्री गुरु पद नख मनि जोति। सुमिरत दिब्य दृष्टि हिंय होती' की स्वीकृति देकर बार-बार गुरु के महत्व पर बल दिया। निर्गुण संतों ने नाम महिमा का बार-बार उल्लेख किया है, रामभक्त कवियों के यहाँ भी नाम स्मरण का विशेष महत्व है। अनेक दृष्टियों से निर्गुण काव्य का रामभक्ति धारा के कवियों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है, इसमें संदेह नहीं।

7.2.6 रामभक्ति धारा और आगम निगम परंपरा

रामभक्ति धारा ने अपना आधार आगम निगम परंपरा से ही ग्रहण किया। तुलसी ने तो आगम निगम का उल्लेख अपने काव्य में बार-बार किया है। उन पर 'वाल्मीकि रामायण', 'श्रीमद् भागवत', 'उपनिषद्', 'आध्यात्म रामायण', 'शिवपुराण', 'भुशुंडि रामायण', 'प्रसन्न राघव', 'हनुमन्नाटक' तथा 'रघुवंश' का प्रभाव स्पष्ट है। इसी प्रकार अन्य रामभक्त कवियों पर भी ये प्रभाव देखे जा सकते हैं। समग्रतः समूची रामभक्ति धारा पर आगम निगम परंपरा का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

बोध प्रश्न-2

(क) रामभक्ति काव्य के दार्शनिक सिद्धांत की जानकारी दीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(ख) रामभक्ति काव्य में अभिव्यक्त समन्वय साधना को स्पष्ट कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7.3 सगुण रामभक्ति धारा में राम का लोकनायक रूप

रामकाव्य परंपरा में राम का अंकन प्रमुखतः दो रूपों में किया गया है – लोकरंजक रूप में तथा लोकरक्षक रूप में। रामकाव्य की रसिक धारा के अंतर्गत राम के लोकरंजक रूप को आधार मानकर उनका श्रृंगारिक अंकन किया गया है। तुलसी के काव्य में राम के लोकरक्षक स्वरूप को ही प्रमुख रूप से उभारा गया है किंतु उनके लोकरंजक व्यक्तित्व को उद्‌घाटित करने के लिए मर्यादित श्रृंगार चेतना का कलात्मक उपयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो तुलसी के राम शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वित रूप हैं। वे सामाजिक मर्यादा के प्रबल पक्षधर हैं। लोक-धर्म उनके व्यक्तित्व में साकार हो उठा है। कोई भी ऐसा सामाजिक आदर्श नहीं है। जिसका प्रतिनिधित्व राम न करते हों। इसलिए वे सही अर्थों में लोक नायक हैं। वे केवल लोकनायक ही नहीं बल्कि स्वयं ब्रह्म हैं। शुक्ल जी के शब्दों में – 'लोक में फैली दुख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनंद अपूर्व मधुरता, प्रचंडता में गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है।' यह विरोधाभासी आकर्षण ही राम को युगों-युगों के लिए लोकनायक के पद पर प्रतिष्ठित कर देता है।

7.4 सगुण रामभक्ति धारा में रामभक्ति का निरूपण

आपने देखा कि किस प्रकार रामकाव्य परंपरा नारी भावना, श्रृंगार भावना और मर्यादावादी दृष्टिकोण के दो ध्रुवों के बीच प्रवाहित हुई।

रामकाव्य भारतीय भक्ति आंदोलन की उपलब्धि है। इसने भावात्मक-सांस्कृतिक एकता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया तथा भक्ति को जन-जन के लिए सुलभ बनाया। भक्ति को ज्ञान और योग मार्ग से श्रेष्ठ घोषित किया। भक्ति के मर्यादा रूप को तुलसीदास स्वीकार करते हैं। दास्य भक्ति ही उनके समर्पण का मूलाधार है :

सेव्य सेवक भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत विचारि।

कृष्णभक्ति के कवियों ने दास्य, सख्य के नवधा भक्ति भाव को अपनाया जिसमें अर्चन, कीर्तन, वंदन, स्मरण आदि प्रमुख हैं, पर रामभक्त कवियों ने मुख्यतः वैधी भक्ति या मर्यादा भक्ति को ही अपना चरम ध्येय माना है। कृष्णभक्ति में रागानुगा भक्ति की सरसता है जबकि रामभक्ति में भक्त-हृदय की आराधनात्मक एकाग्रता। तुलसीदास निर्गुण और सगुण दोनों पद्धतियों को अपनाते हैं, पर कृष्णभक्त कवि सगुण-भक्ति के बल पर जीते हैं, निर्गुण-भक्ति को स्वीकार नहीं करते। सगुण भक्त सूरदास, निर्गुण का खंडन करते हुए सगुण-भक्ति की स्थापना करते हैं। किंतु प्रेम तत्व इन दोनों काव्य धाराओं में समान तत्व है– 'रामहि केवल प्रेम पियारा' इसी भाव की ध्वनि है। दीन-दलित के लिए भक्ति का विश्वास भी मौजूद है। ज्ञानी-विज्ञानी से ज्यादा राम को भक्त प्रिय है– 'सबसे अधिक भगत मोहि भाए।' इस भक्ति का आदर्श रूप हनुमान हैं। तुलसी की भक्ति कल्पना-विलास न होकर सामंती दुःखों से मुक्त होने का एक साधन है। इसलिए इस भक्ति का स्वरूप लोक मंगलपरक है। हम इसे व्यापक मानवतावाद का भाव भी कह सकते हैं क्योंकि इस भक्ति में मानवीय सहानुभूति और व्यापक करुणा का बीज भाव विद्यमान है। यह भक्ति, जाति, धर्म आदि के कारण किसी भी मनुष्य का बहिष्कार नहीं करती है।

आराध्य के कथा-प्रसंगों में अनुरक्ति, गरु-पूजा, आराध्य के गुणगान, आराध्य के प्रति आस्था, इंद्रिय -निग्रह, विश्व को राममय देखना, संतोष और निश्छलता – भक्ति के इन नौ प्रकारों पर उन्होंने विशेष बल दिया। इस प्रकार तुलसी ने व्यापक रूप में भक्ति को निरूपित किया।

7.5 सगुण रामकाव्य धारा का भाव-सौंदर्य

भाव-सौंदर्य की दृष्टि से रामकाव्य धारा का महत्व असंदिग्ध है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के भावों, अनुभूतियों तथा संवेगों को रामभक्त कवियों ने मनोरम और रसानुकूल अभिव्यक्ति प्रदान की है। रामभक्ति काव्य की रसिक धारा के कवियों ने भक्ति के साथ-साथ शृंगार को भी ग्रहण किया। यही कारण है कि भाव-क्षेत्र सीमित होते हुए भी इन कवियों को शृंगार और भक्ति रस के सुंदर परिपाक का श्रेय दिया जा सकता है। तुलसी का भाव-सौंदर्य सचमुच अद्‌भुत है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, ''इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवत्‌भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का सौंदर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्जवल छटा उनमें वर्तमान है।'' शुक्ल जी ये भी मानते हैं, ''राम के प्रामाणिक चरित के द्वारा वे जीवन भर बना रहने वाला प्रभाव उत्पन्न करना चाहते थे, और काव्यों के समान केवल अल्पस्थायी रसानुभूति मात्र नहीं।'' उन्होंने कहीं भी काव्यगत चमत्कार को कथ्य की गरिमा का अतिक्रमण नहीं करने दिया। केशव की 'रामचंद्रिका' में प्रायः इसका उल्टा ही हुआ है। मार्मिक स्थलों पर न रम कर केशव चमत्कार प्रदर्शन पर ही केंद्रित रहे हैं, फलतः 'रामचंद्रिका' में वह भाव-सौंदर्य प्राप्त नहीं होता जो तुलसी को सहज सुलभ है। रसानुभूति के क्षेत्र में सूर के अतिरिक्त तुलसी की तुलना और किसी से नहीं की जा सकती। भावों की मर्मस्पर्शिता, रसानुभूति की तन्मयता–सभी दृष्टियों से संपूर्ण रामकाव्य परंपरा में तुलसी की अद्वितीयता असंदिग्ध है।

7.6 सगुण रामकाव्य धारा का अभिव्यंजना सौंदर्य

अभिव्यंजना सौंदर्य की दृष्टि से संपूर्ण रामकाव्य में तुलसी का काव्य सर्वश्रेष्ठ है। माधुर्योपासक रामभक्त कवियों ने पद, दोहा, चौपाई आदि छंदों का प्रयोग अपने मुक्तकों के

लिए किया है। अग्रदास, नाभादास आदि माधुर्योपासक कवियों की कविताओं में अलंकार के प्रति अतिरिक्त सजगता दिखाई देती है। रामकाव्य में अलंकार प्रयोग तथा चमत्कारप्रियता की दृष्टि से केशवदास का स्थान सर्वप्रमुख है। कविता में अलंकार को सर्वाधिक महत्व देते हुए उनका कहना है :

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता, बनिता मित्त।।

केशव ने 'रामचंद्रिका' को प्रबंध काव्य के रूप में लिखा है, परंतु यहाँ भी उनकी मुक्तक की प्रवृत्ति हावी है। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, ''... यह समझ रखना चाहिए कि केशव उक्तिवैचित्र्य और शब्दक्रीड़ा के प्रेमी थे। जीवन के नाना गंभीर और मार्मिक पक्षों पर उनकी दृष्टि नहीं थी। वे मुक्तक रचना के ही उपयुक्त थे, प्रबंध रचना के नहीं।''

भाषा, छंद, काव्य-रूप आदि सभी दृष्टियों से तुलसीदास ने रामकाव्य को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। तुलसी ने अवधी और ब्रजभाषा – दोनों में रचनाएँ की हैं। उनकी 'रामलला नहछू', 'बरवैरामायण', 'जानकी मंगल', 'रामचरितमानस' आदि अवधी भाषा में लिखी गई हैं; जबकि 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'दोहावली', 'कवितावली' आदि ब्रजभाषा की रचनाएँ हैं। 'जानकीमंगल', 'रामलला नहछू' आदि में उन्होंने अवधी के ठेठ रूप का इस्तेमाल किया है, जबकि 'रामचरितमानस' में अवधी के परिमार्जित रूप का प्रयोग हुआ है। संस्कृत की कोमल पदावली का कलात्मक समावेश उनकी भाषा को विशिष्ट बनाता है। अवधी तथा ब्रजभाषा का प्रयोग मुख्य रूप से करते हुए उन्होंने दूसरी भाषा तथा बोलियों का प्रयोग भी प्रचुरता से किया है। प्रो. लल्लन राय के अनुसार, ''भाषा के संबंध में तुलसी की एक अन्य विशेषता है, मुक्त रूप से दूसरी बोलियों और भाषाओं से शब्द ग्रहण। इसमें ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी तथा कुछ नितांत स्थानीय शब्दों के साथ अरबी और फारसी भाषा के शब्द भी आ जाते हैं।'' 'रामचरितमानस' के बालकांड में किए गए शब्द-प्रयोग को देखिए :

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरस सबल साहिब रघुराजू।।

तुलसी ने अपनी कविता के लिए प्रबंध और मुक्तक – दोनों काव्य-रूपों का इस्तेमाल किया है। 'रामचरितमानस' प्रबंध काव्य है। 'कवितावली', 'दोहावली', 'वैराग्य-संदीपनी', 'रामज्ञा प्रश्न' आदि रचनाएँ मुक्तक हैं।

तुलसीदास की रचनाओं में छंद-प्रयोग की पर्याप्त विविधता है। 'कवितावली' में कवित्त और सवैया का प्रयोग है तो दोहावली में दोहा छंद का। 'रामचरितमानस' में दोहा, चौपाई और सोरठा का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है। 'गीतावली' में प्रगीत शैली का प्रयोग किया गया है।

अलंकारों का भी सुंदर और समुचित प्रयोग रामकाव्य में तुलसीदास की ही कविताओं में दिखाई देता है। उन्होंने उपमा, रूपक, श्लेष, अनुप्रास आदि का बहुत ही सुंदर प्रयोग किया है। यहाँ कुछ उदाहरण दृष्टव्य है :

अनुप्रास – श्रोता सुमति सुशील सुचि कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास।।

उपमा – सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबहि पद कृपाधाम के।।

तुलसी के काव्य में यथाप्रसंग मुहावरे और लोकोक्तियों का भी सुंदर प्रयोग किया गया है :

कहु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खगही कै भाषा।।

इस प्रकार अभिव्यंजना सौंदर्य की दृष्टि से रामकाव्य को तुलसी ने विशिष्ट ऊँचाई प्रदान की है।

बोध प्रश्न-3

(क) निम्नलिखित पुस्तकों के लेखकों का नाम बताइए।

(i) रघुवंश .....

(ii) उत्तर रामचरित .....

(iii) पाउमचरियउ .....

(iv) भरत मिलाप .....

(v) रामलला नहछू .....

(ख) निम्नलिखित रामभक्त कवियों का परिचय तीन-तीन पंक्तियों में दीजिए।

(i) नाभादास

.....

.....

.....

(ii) अग्रदास

.....

.....

.....

(iii) नरहरिदास

.....

.....

.....

(iv) ईश्वरदास

.....

.....

.....

(ग) तुलसीदास की रचनात्मकता का परिचय पाँच पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

(घ) रामभक्ति काव्य के भाव-सौंदर्य पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(ङ) रामभक्ति काव्य के अभिव्यंजना पक्ष की विशिष्टताओं का उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(च) भारतीय परंपरा में प्राचीन समय से लेकर तुलसीदास तक के रामभक्ति साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7.7 सारांश

- सगुण काव्यधारा का विश्वास ईश्वर के अवतारी रूप में है। इसमें विष्णु के दस अवतारों में राम और कृष्ण के अवतार की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। इन्हीं दोनों अवतारों को आधार बनाकर सगुण भक्तिधारा में रामभक्ति काव्य तथा कृष्णभक्ति काव्य का विकास हुआ।
- रामभक्ति काव्य की परंपरा संस्कृत के वाल्मीकि रामायण से शुरू होती है।
- राम को आधार बनाकर बौद्ध और जैन कवियों ने भी रचनाएँ की।
- हिंदी में रामकाव्य को सर्वाधिक ऊँचाई दिलाने वाले कवि तुलसीदास हैं। इन्होंने राम के मर्यादा पुरूषोत्तम रूप को प्रतिष्ठित किया। इन्होंने अपनी साधना में समन्वय पर बल दिया।
- रामकाव्य अवधी तथा ब्रजभाषा – दोनों में लिखी गई है। काव्यरूप में भी प्रबंध और मुक्तक – दोनों शैली में रचना की गई है।

7.8 शब्दावली

कूर्म : कछुआ

वाराह : शूकर (सूअर)

पाठ-भेद : किसी एक रचना की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में अंतर

दीक्षा : शिष्यत्व ग्रहण करना

उत्कट : अत्यधिक

उपालंभ : उलाहना

वाग्वैदग्ध्य : वाणी की चतुरता (संवाद-कौशल)

द्वैत : जीव और ब्रह्म की पृथक सत्ता

अद्वैत : जीव ओर ब्रह्म दोनों की अभेदता

लोकमत : सामाजिक आदर्श

वेदमत : वैदिक आदर्श

मुमुक्षु : मोक्ष का इच्छुक

मध्यमार्गी : भोग और त्याग में संतुलन का पक्षधर

आलोक स्तंभ : वह स्तंभ जो अपने प्रकाश से दूर तक मार्ग दिखाता है।

7.9 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी साहित्य का इतिहास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
- *तुलसी काव्य मीमांसा* – डॉ. उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
- *महाकवि तुलसीदास : युग संदर्भ* – डॉ. भगीरथ मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(क) (i) – ✓

(ii) – ×

(iii) – ×

(iv) – ×

(v) – ✓

(ख) देखें – भाग 7.2.2

(ग) देखें – भाग 7.2.1

बोध प्रश्न-2

(क) देखें – भाग 7.2.4

(ख) देखें – भाग 7.2.3

बोध प्रश्न-3

(क) (i) – कालिदास

(ii) – भवभूति

(iii) – स्वयंभू

(iv) – ईश्वरदास

(v) – तुलसीदास

(ख) देखें – भाग 7.2.2

(ग) देखें – भाग 7.2.2

(घ) देखें – भाग 7.5

(ङ) देखें – भाग 7.6

(च) देखें – भाग 7.2

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY